वर्ष : ६ अंक : २ फरवरी : १९८७

विवेक शिखा

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

११. श्री पी० राम	—	पटना (बिहार)
१२. श्री अशोक कुमार टाँटिया	—	कलकत्ता (प० बंगाल)
१३. श्री धर्म पाल	—	नई दिल्ली (नई दिल्ली)
१४. श्री रमेश चन्द्र कपूर	—	इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश)
१५. श्री पलक बसु	—	इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश)
१६. प्राचार्य, संतगजानन महाराज कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग	—	शेगाँव (महाराष्ट्र)
१७. श्री प्रभाकर सिंह	—	इलाहाबाद
१८. श्रीमती मंजु रस्तोगी	—	दुमका (बिहार)
१९. श्री कमल कुमार गुहा	—	कलकत्ता (पश्चिम बंगाल)
२०. श्री विवेक भुजंग राव कुलकर्णी	—	नागपुर (महाराष्ट्र)
२१. श्रीराम विलास चौधरी	—	सुपौल, दरभंगा (बिहार)
२२. डा० रमेश चन्द्र प्रसाद	—	देवघर (बिहार)
२३. श्री मातादीन मिश्र	—	सारण (बिहार)
२४. एम० एम० नावालगी	—	कादरा (कर्नाटक)
२५. श्री हेमराज साहू	—	नरसिंहपुर (म० प्र०)
२६. डा० प्रकाश चन्द्र मिश्र	—	पटना (बिहार)
२७. श्री विनोद ब्रजभूषण अग्रवाल	—	नागपुर (महाराष्ट्र)
२८. श्री केशरदेव भालोटिया	—	जरमुण्डी (बिहार)
२९. श्री धर्मवीर शर्मा	—	खण्डवाया (उत्तर प्रदेश)
३०. श्री शिवशंकर सुखदेव पाटील	—	शेगाँव (महाराष्ट्र)
३१. श्री गजानन महाराज संस्थान	—	शेगाँव (महाराष्ट्र)
३२. श्री दया शंकर तिवारी	—	लाल बाजार, सीवान (बिहार)
३३. चुक चुक	—	बेलगाँव
३४. डॉ० श्रीमती वीणा कर्ण	—	पटना (बिहार)
३५. डॉ० सम्पत	—	भदोल (महाराष्ट्र)
३६. कुमारी अल्पना सकलेचा	—	बम्बई

इस अंक में

१. श्रीरामकृष्ण ने कहा है—		१
२. श्रीशिव पञ्चाक्षर स्तोत्रम्	श्रीमत् शंकराचार्य	२
३. डूबो-डूबो रूप-सिन्धु में मेरे मन !	(सम्पादकीय सम्बोधन)	३
४. दूसरों के लिए जीने में कई गुना सुख है	स्वामी आत्मानन्द	५
५. अर्धनारीश्वर शिव एवं स्वामी विवेकानन्द	स्वामी ब्रह्मेशानन्द	१३
६. कर्मयोग (२)	स्वामी वेदान्तानन्द	१८
७. विवेकतीर्थ में कुमारी जोसिफ मॅक्लायड (२)	स्वामी अमलेशानन्द	२१
८. भव सागर से पार करो [कविता]	डॉ० वीणा कर्ण	२४
९. बेलुड़ मठ में रूस के वैज्ञानिकों-लेखकों का आगमन		२५
१०. पुस्तक समीक्षा : (हिन्दू धर्म प्रश्नोत्तर मालिका)		३०

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो।

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—६ फरवरी—१९८७ अंक—२

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

संपादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

सहायक संपादक

शिशिर कुमार मल्लिक

श्याम किशोर

संपादकीय कार्यालय।

रामकृष्ण निलयम्

जयप्रकाश नगर,

छपरा—८४१३०१

(बिहार)

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य	२५० रु०
वार्षिक	२० रु०
रजिस्टर्ड डाक से	३५ रु०
एक प्रति	२ रु० ५० पैसे

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें :

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

अगर चूल्हे की आग पर गीली लकड़ी भी रख दी जाए तो आँच लगकर उसके भीतर का पानी सूख जाता है और लकड़ी जल उठती है। इसी तरह, साधुसंग के प्रभाव से संसारी जीवों के भीतर से कामिनी-कांचन रूपी जल सूखकर उनमें विवेक की अग्नि जल उठती है।

(२)

जिस प्रकार धनिकों के घर की दासी मालिक के बच्चों को अपने ही बच्चों की तरह प्रेम से पालती-पोसती है, पर मन ही मन निश्चित जानती है कि इन पर मेरा कोई अधिकार नहीं, उसी प्रकार, तुम भी अपने बच्चों का प्रेम से पालन-पोषण करो: परन्तु मन ही मन यह जान रखो कि उन पर तुम्हारा कोई अधिकार नहीं, भगवान ही उनके यथार्थ पिता हैं।

(३)

कामिनी-कांचन का पूर्ण त्याग संन्यासी के लिए है। संन्यासी को स्त्रियों का चित्र तक नहीं देखना चाहिए। अचार या इमली की याद आते ही मुँह में पानी आ जाता है, देखने या छूने की तो बात ही क्या ! पर तुम जैसे गृहस्थों के लिए इतना कठिन नियम नहीं है, यह केवल संन्यासियों के लिए है। तुम ईश्वर की ओर मन रखकर, अनासक्त भाव से स्त्री के साथ रह सकते हो। पर मन को ईश्वर में लगाने और अनासक्त बनाने के लिए बीच-बीच में निर्जन-वास करना चाहिए। ऐसे निर्जन स्थान में जाकर तीन दिन, या सम्भव न हो तो एक ही दिन अकेले रहते हुए व्याकुल होकर ईश्वर को पुकारना चाहिए।

एक या दो सन्तान हो जाने के बाद पति-पत्नी को भाई-बहन की तरह रहते हुए सतत भगवान् से प्रार्थना करनी चाहिए कि 'हे प्रभो, हमें शक्ति दो ताकि हम संयम और पवित्रतापूर्ण जीवन बिता सकें।'

श्रीशिवपञ्चाक्षरस्तोत्रम्

नागेन्द्रहाराय त्रिलोचनाय भस्माङ्गरागाय महेश्वराय ।
नित्याय शुद्धाय दिगम्बराय तस्मै 'न'काराय नमः शिवाय ॥१॥

मन्दाकिनीसलिल चन्दनचर्चिताय नन्दीश्वर प्रमथनाथ महेश्वराय ।
मन्दारपुष्प बहुपुष्पसुपूजिताय तस्मै 'म'काराय नमः शिवाय ॥२॥

शिवाय गौरीवदनाब्जवृन्द सूर्याय दक्षाध्वर नाशकाय ।
श्रीनीलकण्ठाय वृषभध्वजाय तस्मै 'शि'काराय नमः शिवाय ॥३॥

वशिष्ठ कुम्भोद्भवगौतमार्यमुनीन्द्र देवार्चित शेखराय ।
चन्द्रार्कवैश्वानरलोचनाय तस्मै 'शि'काराय नमः शिवाय ॥४॥

यक्षस्वरूपाय जटाधराय पिनाकहस्ताय सनातनाय ।
दिव्याय देवाय दिगम्बराय तस्मै 'य'काराय नमः शिवाय ॥५॥

पंचाक्षरमिदं पुण्यं यः पठेच्छिवसन्निधौ ।
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ॥६॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्य विरचितं शिवपञ्चाक्षर स्तोत्रं सम्पूर्णम्

जिनके कंठों में साँपों का हार है, जिनके तीन नेत्र हैं, भस्म ही जिनका अंगराग है, दिशाएँ ही जिनका वस्त्र हैं, उन शुद्ध अविनाशी महेश्वर 'न'कार स्वरूप शिव को नमस्कार है ॥१॥ गंगाजल और चन्दन से जिनकी अर्चना हुई है, मन्दार-पुष्प तथा अन्यान्य कुसुमों से जिनकी सुन्दर पूजा हुई है, उन नन्दी के अधिपति प्रमथगणों के स्वामी महेश्वर 'म'कार स्वरूप शिव को नमस्कार है ॥२॥ जो कल्याण स्वरूप हैं, पार्वतीजी के मुखकमल को विकसित (प्रसन्न) करने के लिए जो सूर्यस्वरूप हैं, जो दक्ष के यज्ञ का नाश करने वाले हैं, जिनकी ध्वजा में बैल का चिह्न है, उन शोभाशाली नीलकंठ 'शि'कार स्वरूप शिव को नमस्कार है ॥३॥ वशिष्ठ, अगस्त्य और गौतम आदि श्रेष्ठ मुनियों ने तथा इन्द्र आदि देवताओं ने जिनके मस्तक की पूजा की है, चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि जिनके नेत्र हैं उन 'व'कार स्वरूप शिव को नमस्कार है ॥४॥ जिन्होंने यक्ष रूप धारण किया है, जो जटाधारी हैं, जिनके हाथ में पिनाक है, जो दिव्य सनातन पुरुष हैं उन दिगम्बर देव 'य'कार स्वरूप शिव को नमस्कार है ॥५॥ जो शिव के समीप इस पवित्र पञ्चाक्षर का पाठ करता है वह शिव लोक को प्राप्त करता और वहाँ शिवजी के साथ आनन्दित होता है ॥६॥

सम्पादकीय सम्बोधन

डूबो डूबो रूप-सिन्धु में मेरे मन !

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

एक कहानी है। बड़ी रोचक। बड़ी प्रेरक। बड़ी प्रसिद्ध। कहानी यह है कि एक उद्यान था। बड़ा मनोरम। बड़ा हियहारी। पहला मनुष्य जिसे ईश्वर ने बनाया था उसी लुभावने उद्यान में रहा करता था। बड़े अच्छे-अच्छे मीठे-मीठे फलों के पेड़ थे उस में। ईश्वर रोज उस उद्यान में आते थे अपनी आदिम संतान आदम से, मनुष्य से घंटों बातें करते थे, साथ-साथ घूमते-टहलते थे, नाचते-गाते थे और मीठे-मीठे फल खाया करते थे। ईश्वर ने आदम से कह रखा था—सभी फलों को जब चाहो, खाओ, मनचाहा खाओ मगर एक पेड़ का फल मत खाना—ज्ञान के पेड़ का फल। और एक दिन ऐसा हुआ कि मनुष्य का मन ललचाया। आखिर मनुष्य का ही तो मन ठहरा ! सो मनुष्य ने सोचा कोई बात जरुर है। शायद ज्ञान के पेड़ का फल ज्यादा ही मीठा होगा। और एक दिन आदम ने उसे खा ही लिया।

लेकिन जिस दिन आदम ने ज्ञान के पेड़ का फल खा लिया उस दिन से उसका चैन छिन गया। आनन्द लुट गया। वह अशान्त, पीड़ित और बेचैन रहने लगा। उसे लगा कि उसने पाप किया है, वह प्रभु से छिपने लगा। प्रभु तो रोज ही उस उद्यान में, बगीचे में आते थे मगर यह आदम था कि भागा-भागा फिरता था प्रभु से, किस मुँह से वह प्रभु के सामने आता ? उसने प्रभु के आदेश का उल्लंघन किया था। उसने प्रभु की अवमानना की थी। उसने पाप किया था।

और तब से मनुष्य भागा फिर रहा है भगवान से। आँखें चुरा रहा है भगवान से। मुँह फेर रहा है भगवान से। और जितना ही वह भगवान से भागा फिर रहा है उसकी बेचैनी उतनी ही बढ़ रही है। वह उतना ही अशान्त, उतना ही उद्भ्रान्त और उतना ही बेसहारा होता जा रहा है। भगवान अब भी उस आनन्द-वन में आ रहे हैं, रोज-रोज आ रहे हैं, पुकार रहे हैं आदम को, खोज-ढूँढ़ रहे हैं आदम को, लेकिन आदमी है कि कभी इस आड़ तो कभी उस आड़।

मनुष्य चालाक है। चालाक तो उसे होना ही था। उसने सरलता का, सच्चाई का, सीधेपन का मीठा फल खाना छोड़कर ज्ञान के तरु का फल खा लिया था। अब उसकी बुद्धि पैनी हो गयी। वह भगवान से भागता रहा, लेकिन यह शब्द भी उछालता रहा कि मैं भगवान को ही ढूँढ़ रहा हूँ। वह भगवान को पाने के उपायों पर, तरकीबों पर मोटी-मोटी किताबें लिखता रहा, बड़े-बड़े भाषण देता रहा, बड़े-बड़े मन्दिर, मस्जिद और गिरजे और गुरुद्वारे खड़े करता रहा और फिर भगवान के नाम पर तलवार चलाता रहा, लोगों की गरदनें उतारता रहा और चिल्लाता रहा—मैं भगवान को ढूँढ़ रहा हूँ, मैं भगवान का बंदा हूँ। उसने ज्ञान के पेड़ का फल खा लिया था इसलिए वह भगवान के लिए लोगों का लहू बहाता रहा, शान्ति के लिए अणु बम का आविष्कार करता रहा, बंधुता-मानवता के नाम पर नक्षत्र युद्ध (स्टार वार) की साधना करता रहा।

सच, कितने चालाक हो गये हैं हम ! हमारा ज्ञान कितना बढ़ गया है ! लेकिन अपने बढ़ते ज्ञान से हम स्वयं को ही छल रहे हैं। हम स्वयं को धोखा दे रहे हैं।

और स्वयं को छलने से, स्वयं को धोखा देने से बड़ी त्रासदी और क्या हो सकती है हमारे लिए?

सच यह है कि हमारे ज्ञान ने हमें अनेक सुविधाएँ प्रदान कर दी हैं - कार, फ्रीज, टी० वी०, चल चित्र, वायुयान आदि। कई नये-नये उपकरण आ गये हैं। ज्ञान के पेड़ के जितने फल हो सकते थे, लगता है हमने अब तक सब के सब को तोड़कर उनका स्वाद ले लिया है। ये फल भी कम मीठे नहीं हैं। ये फल हमें दैहिक, ऐन्द्रिक और भौतिक सुख प्रचुरता से प्रदान करते हैं। लेकिन तब भी हम अशान्त ही हैं। हम बेचैन ही हैं। दिव्यता को छोड़कर नव्यता की खोज में हम पिल पड़े हैं। कभी हिप्पी-संस्कृति, कभी प्रति-संस्कृति (काउन्टर कल्चर) और कभी क्रोधी संस्कृति (एंग्री कल्चर) की ओर हम भागते-दौड़ते हैं और फिर निराश होकर, थकथकाकर अपनी नियति को दोष देकर कहीं बैठ जाते हैं—हारे-से, थके-से, टूटे-से।

ईश्वर को हमें पाना ही होगा। ईश्वर से वियुक्त होकर हमारी कोई अहमियत नहीं रहती, हमारी कोई सत्ता नहीं रहती, कोई अस्तित्व नहीं रहता। हम हम नहीं रहते। हमें ईश्वर की तलाश करनी ही होगी।

कई मित्रों के पत्र आते हैं, 'कुछ ऐसे उपाय सुझाइए कि भगवान मिल जायँ। कुछ ऐसे विधान बताइए, ऐसे तरीके बताइए कि भगवान को पा सकूँ।' हैरानी होती है यह सब पढ़कर। ईश्वर को पाना कहाँ है, ईश्वर को ढूँढ़ना कहाँ है? जो छिन गया है उसे पाने की कोशिश की जाती है। जो खो गया है उसे ढूँढ़ने की चेष्टा की जाती है। लेकिन ईश्वर खोया नहीं है। वह तो है ही। वही तो है एक मात्र। उसकी सत्ता, उसका अस्तित्व, उसका सौन्दर्य और उसका ऐश्वर्य हो तो सर्वत्र बिखरा पड़ा है। जरुरत ईश्वर को ढूँढ़ने की नहीं, ईश्वर को देखने के लिए, पहचानने के लिए अपनी आँखें खोलने की है। जरुरत ईश्वर को पाने की नहीं, ईश्वर में होने की, ईश्वर में जीने की, ईश्वर में साँस लेने की है।

स्वामी विवेकानन्दजी कहा करते थे—"मैं उस ईश्वर की उपासना करता हूँ जिसे अज्ञान के कारण मनुष्य कहा जाता है।" बड़े पते की और ध्यान देने की बात है यह। दो स्थितियाँ हो सकती हैं। (१) या तो यह संसार ईश्वर की सृष्टि नहीं है या (२) यह संसार ईश्वर की सृष्टि है। यदि संसार ईश्वर की सृष्टि नहीं है तब मनुष्य निरा मनुष्य है, पेड़ पेड़ है, पर्वत पर्वत है और नदियाँ केवल नदियाँ। लेकिन अगर संसार ईश्वर की ही महत्तम कृति है तब यहाँ ईश्वर के सिवा और कुछ नहीं है। एक पौधा, चाहे वह गुलाब का ही क्यों न हो, तब तक केवल एक पौधा है जब तक वह ईश्वर की सृष्टि नहीं है। ज्यों ही उसे हम ईश्वर की सृष्टि के रूप में देखने लगते है त्यों ही गुलाब अपने गुलाबत्व से हटकर ईश्वरत्व में रूपान्तरित हो जाता है, बदल जाता है। ईश्वर को देखना एक विशेष प्रकार की दृष्टि का होना है। दृष्टि के इस परिवर्तन से ये चाँद-तारे, ये पर्वत-नदियाँ, ये नर-नारी, ये कीड़े-मकोड़े, ये पंडित-मूर्ख, धनी-दरिद्र, गोरे-काले सब केवल ईश्वर हो जाते हैं और कुछ नहीं।

अपनी आँखों के इस बदलाव से, दृष्टि की शैली के इस मनोरम परिवर्तन से —'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'—का भाष्य स्वतः मुखरित होने लगता है। तब ईश्वर को ढूँढ़ना नहीं पड़ता, ईश्वर में होने का अनुभव करना रहता है। और इस अनुभव में आनन्द का जो रस-सागर अपना फेनिल ज्वार उठाता रहता है उसमें डूबते-उतराते रहना पड़ता है। ईश्वर के इस विराट् रूप के सागर में, रस के सागर में डूबने पर हमारी सीमा टूट जाती है। मन्दिर-मस्जिद-गिरजा और गुरुद्वारे की दीवारें ढह जाती हैं और रह जाती हैं केवल आनन्द की आलोक तरंगें, सच्चिदानन्द की अखण्ड ज्योति धारा, ब्रह्मानन्द की अमृत फुहारें।

भगवान श्रीरामकृष्ण एक गीत प्रायः ही अपने गंधर्व विनिन्दित मधुर कण्ठ से गाया करते थे—भाव विभोर होकर, तन्मय होकर—

डुब् डुब् डुब् रूप सागरे आमार मन
तलातल पाताल खुंजले पाबि रे प्रेम रत्नधन ।।

खुंज् खुंज् खुंज् खुंजले पावि, हृदय मांझे वृन्दावन।
दीप् दीप् दीप् ज्ञानेर बाति, ज्वलबे हृदे अनुक्षण ।।

—हे मेरे मन, रूप के सागर में डूबो, डूबो, डूबो। तलातल पाताल में खोजने पर प्रेम का यह रत्नधन पाओगे। ढूँढ़ो, ढूँढ़ो, ढूँढ़ो। ढूँढ़ने पर अपने हृदय में यह वृन्दावन मिलेगा। ज्ञान की दीपित ज्योतित वर्तिका प्रतिपल अपने हृदय में जलाओ।

बड़ा भावपूर्ण, बड़ा अर्थवान है यह गीत। कहीं खोजना नहीं, कहीं ढूँढ़ना नहीं। बस केवल दृष्टि-परिवर्त्तन आवश्यक है। सारा जगत ईश्वर का रूप-सागर है। कैसी असीम अनन्त दिव्य रूप-राशि प्रभु की तरलायित हो रही है इस चराचर जगत में ! इसे देखो। इस रूप-सागर में डूबो और चरम आनन्द को प्राप्त करो। यह ईश्वर जगत के रूप में हमारे बाहर व्याप्त हैं और यही ईश्वर हमारे भीतर भी हैं। अपने चित्त-समुद्र के तलातल में डूबो और प्रेमस्वरूप उस परम रत्न को प्राप्त कर लो। यह आनन्द का वृन्दावन तुम्हारे भीतर है। ईश्वरीय दृष्टि की, परम ज्ञान की बाती अपने हृदय में प्रतिपल जलाये रहो। देखोगे एक ज्योति का ज्वार उठ रहा है तुम्हारे भीतर, एक आलोक का संसार भासमान है तुम्हारे भीतर। वही तो ईश्वर है—असीम, अनन्त आलोक-पुरुष, आदित्य वर्ण चिदानन्द स्वरूप।

श्रीरामकृष्ण कहा करते थे—सब लोग बाबू का बगीचा देखकर ही आवाक् हैं—कैसे पेड़, कैसे फूल, कैसी झील, कैसा बैठक खाना, कैसी उसकी भीतरी छवि, यही सब देखकर अवाक् हैं। किन्तु बगीचे के मालिक जो बाबू हैं उनको कितने आदमी ढूँढ़ते हैं ? बाबू को खोजते हैं दो-एक व्यक्ति। ईश्वर को व्याकुल होकर खोजने पर उनका दर्शन होता है, उनके साथ बातें होती हैं, कथा होती है; जैसे मैं तुम्हारे साथ बातें कर रहा हूँ। सच कहता हूँ दर्शन होता है।" बड़ी आश्वस्ति की मर्मवाणी है यह। व्याकुल होना है। उसे पाने के लिए एक आन्तरिक पुकार, एक अन्तर्नाद, एक आकुल प्रार्थना की आवश्यकता है।

प्रार्थना सुनी जाती है। हम प्रार्थना नहीं करते, प्रार्थना का स्वांग रचते हैं, ढोंग करते हैं। क्या हम सचमुच ईश्वर को चाहते हैं ? मैंने देखा है, रविवार को इन दिनों मन्दिरों में ठाकुर की संध्यारती में लोगों की, भक्तों की उपस्थिति कम होने लगी है। कारण क्या है ? उस दिन शाम को टी० वी० पर फिल्म दिखाई जाती है। लोग कहते हैं अब रविवार को आना जरा मुश्किल है। और दिन आ लेंगे। ईश्वर हमारी अनिवार्यता नहीं रह गये हैं। ईश्वर और फिल्म में, ईश्वर और कामिनी में, ईश्वर और धन में दूसरे पक्ष का पलड़ा भारी पड़ गया है। ईश्वर हमारी अनिवार्यता नहीं हैं। हम ईश्वर को हलके ढंग से ग्रहण करते हैं। फिर ईश्वर हमें मिलने से रहा। हमें दोनों में से एक को चुनना ही होगा। हमें शाश्वत, अखंड आनन्दमय ईश्वर चाहिए या कामिनी-कंचन। भीतर तो विषय-वासना का हाहाकार हो, भोग का, विलास का ज्वार हो और बाहर से ईश्वर की पुकार, तब तो ईश्वर-दर्शन हुआ, श्रीरामकृष्ण का कथन है—'.. दृढ़ होना होगा; व्याकुल होकर उन्हें पुकारना होगा। विषयी के ईश्वर कैसे होते हैं, जानते हो ? • जैसे कोई फिट् बाबू पान चबाते-चबाते हाथ में स्टिक (छड़ी) लेकर बाग में टहलते-टहलते एक फूल तोड़कर साथी से कहता है,— ईश्वर ने कैसा ब्युटीफुल फूल बनाया है। किन्तु उस विषयी का भाव क्षणिक रहता है, जैसे गरम लोहे पर पानी का एक छींटा। एक(साकार या निराकार) पर दृढ़ होना होगा। डुबकी लगाओ। नहीं लगाने से समुद्र के भीतर रत्न नहीं पाया जा सकता। जल के केवल ऊपर तिरने से नहीं पाया जा सकता।"

ईश्वर जब हमारी भूख बन जाते हैं, हमारी प्यास बन जाते हैं तब उनके अपरूप रूप का साक्षात्कार होता है। डूबना ही होगा हमें उन्हें पाने के लिए। कबीर कहते हैं—

जिन ढूँढ़ा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ ।
मैं बौरी डूबन डरी रही किनारे बैठ ।।

डूबने के डर से किनारे बैठने से काम नहीं चलेगा। गहरे पानी में उतरना ही होगा। और जब हम उस रूप-सिन्धु में उतरने लगेंगे, गहरे और गहरे उतरते चले जायेंगे तो एक क्रान्ति घटित होगी हमारे जीवन में। एक अँधेरा छँटेगा। एक कुहरा जीवन का फटेगा। एक सूर्योदय होगा—परमात्मा के प्रकाश से हमारा जीवन आलोकित हो जायगा। हम धन्यता को प्राप्त होंगे।

भगवान श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ और स्वामीजी हम में परमात्मा के रूप-सागर में डूबने की आकुलता भरें—यही उनसे मेरी प्रार्थना है। जय श्रीरामकृष्ण ! जय श्रीमां ! जय स्वामीजी !

बातचीत-अंश

दूसरों के लिए जीने में कई गुना सुख है

—स्वामी आत्मानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (म० प्र०)

[ऋतुचक्र के सम्पादक श्री विक्रम कुमार ने श्रीमत् स्वामी आत्मानन्द जी से एक इंटरव्यू लिया था। स्वामी आत्मानन्दजी की अनुमति से उसे यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है।—सं०]

विक्रम कुमार : स्वामी जी, जैसा कि आपसे समय लिया था—आज दिनांक २४ जुलाई, ८६ और ९ बजे का समय रखा था, अभी कोई साढ़े नौ बज रहा है—लगातार बारिश और उसके बावजूद अपने सारे कार्यक्रमों में से, 'ऋतुचक्र' के लिए···। पुस्तक की आगे चलकर योजना है, जिसमें कोई बारह व्यक्तियों के जीवन को लेकर चर्चाएँ—उसी शृंखला में आपके जीवन, प्रवास, कार्य, अध्ययन, अनुभव पर व्यापक बातचीत; तो जैसे तीर्थ और मन्दिर पर मैं इस समय हूँ, ऐसा आपका जीवन; सबसे पहले अपने जन्म, घर-परिजन, शिक्षा-दीक्षा, मिशन—इनको संक्षेप में व्यक्त करें ;

स्वामी आत्मानन्द : अगर जन्म-तारीख पूछनी हो, वह है ६ अक्टूबर १९२९। रायपुर जिले के एक गाँव में जन्म हुआ—बरबन्दा। उसके बाद प्राथमिक जो पढ़ाई हुई, वह तो वहीं गाँव में हुई। उस समय गांधी जी ने एक नयी योजना शुरू की थी—बुनियादी तालीम। वर्धा में विद्या मन्दिर के नाम से वह संस्था स्थापित हुई। जब पिता जी को एक शिक्षक के रूप में वहाँ के लिए चुना गया और १९३८ से १९४०,—यह जो समय है, पिता जी ने वर्धा में बिताया, तो स्वाभाविक है कि हम लोगों ने भी वर्धा में बिताया। वहाँ पर पाँचवीं कक्षा के लिए मैंने नवभारत विद्यालय में प्रवेश लिया। पाँचवी और छठी ये दो कक्षाएँ मैंने नवभारत विद्यालय से उतीर्ण कीं। नवभारत विद्यालय ही आज जी. एस. कॉलेज ऑफ कॉमर्स के नाम से परिचित है। हम लोगों के उस समय प्रधान अध्यापक थे—श्रीमन्नारायण अग्रवाल

जो बाद में चल कर राज्यपाल और राजदूत भी बने। पिता जी का सेवाग्राम आना-जाना लगा ही रहता था—सप्ताह में लगभग छह दिन वे जाते ही थे। हम लोगों का भी आना-जाना बना रहता। वहीं पर बापू को निकट से देखा – कस्तूरबा को देखा, बहुत-से जो विख्यात नेतागण थे उनको भी निकट से देखने का अवसर वहीं लगा। फिर सातवीं से ग्यारहवीं तक की परीक्षा—जिसे हमलोग मैट्रिक कहा करते थे, रायपुर में आकर सेन्ट पॉल हाई स्कूल से उत्तीर्ण की। १९४५ में हम नागपुर आ गये। वहाँ पर छह वर्षों तक विज्ञान की पढ़ाई की और फिर एम. एससी. प्योर मैथेमेटिक्स में किया। यह शैक्षणिक इतिहास रहा है। १९५१ में वहीं पर रामकृष्ण आश्रम, नागपुर में प्रवेश लिया। तो १९५१ से आज १९८६, यह पैंतीस वर्षों का संन्यास का जीवन, जो रामकृष्ण मिशन को अर्पित रहा है।

विक्रम कुमार : वह जो मिशन से जुड़ने के क्षण रहे, क्या जीवन से कहीं पलायन के क्षण रहे या जीवन की नयी सीढ़ियों को छूना चाहते थे?

स्वामी आत्मानन्द : पलायन तो वह करता है, जो जीवन से निराश होता है। पलायन का भाव उसके सामने नहीं पैदा होता, जिसके सामने सारी सुविधाएँ खुली होती हैं। हमारे सामने तो सारी सुविधाएँ खुली थीं। एम. एससी. की परीक्षा पास की—हम स्वर्णपदक के अधिकारी तो थे ही—रेकार्ड मार्क्स रहे। तो स्वाभाविक है कि सारे दरवाजे खुले थे, जिसको भौतिक सम्पन्नता का दरवाजा कहते हैं। इसमें तो पलायन के लिए कहीं कोई गुंजाइश ही नहीं होती है।

विक्रम कुमार : इतनी आसानी से भौतिक सम्पन्नता को ठुकरा दिया?

स्वामी आत्मानन्द : इसके पीछे कोई तत्व होना चाहिये। वह था स्वामी विवेकानन्द का अद्वैत, जिसने इस ओर बहुत प्रभावित किया। स्वामीजी ने एक स्थान पर कहा कि बहुत से जन्म तो तुम अपने लिए बिता चुके हो, भोग तो बहुत भोग चुके हो। हम हिन्दू हैं और इसलिए हमें पुनर्जन्म पर पूरी तरह से विश्वास है, जन्मों की कड़ियों को हम स्वीकार करते हैं। वे कहा करते थे कि मनुष्य को ऐसा लगता है कि स्वार्थ में ही सुख है, उसको धीरज नहीं है—परमार्थ के लिए जीने का। पर जो व्यक्ति इस स्वार्थ को त्याग कर दूसरों के लिए जी सकता है, यदि थोड़ा-सा धीरज उसमें आ जाये, तो देखियेगा कि कहीं कई गुना सुख दूसरों के लिए जीने में है। यह जो उस समय पढ़ा था और जिसकी हमें बौद्धिक प्रतीति हुई थी, वह आज अनुभव के स्तर पर उतर रही है, ऐसा लगता है। सभी तो अपने लिए जीते हैं, दूसरों के लिए जीने में भी आनन्द हो सकता है और अपने लिए जीने की अपेक्षा दूसरों के लिए जीने में अधिक आनन्द हो सकता है—यह जो स्वामी विवेकानन्द का कथन था, उसकी सत्यता आज अनुभव तो जरूर हो रही है। यही वह सूत्र था, जिसने संन्यास के जीवन की ओर मोड़ा। दूसरी जो विशेष बात थी, विवेकानन्द के उपदेशों में—वह एक नयी संन्यास-परम्परा, कि संन्यास ग्रहण करते हुए भी संसार से पलायन नहीं। पहले संन्यास का मतलब होता था—दुनिया छोड़कर कहीं चले जाना; पर इन्होंने तो संसार के अन्दर ही हमें रखा और दूसरों के लिए काम करने को कहा। हम जब दूसरों की सेवा करेंगे, तो हमारे अपने लिए मुक्ति की साधना बनती है— यह उनका सूत्र था। एक मुक्ति की साधना हम अपने कमरे में बैठकर करें—ध्यान-चिन्तन, और मुक्ति की साधना का दूसरा और बड़ा सशक्त रूप, जो स्वामी विवेकानन्द ने रखा कि दूसरों की सेवा। इन बातों ने बहुत अधिक प्रभाव डाला और यही कारण था कि शैक्षणिक अध्याय पूरा होते ही हम चले गये मिशन में।

विक्रम कुमार : जीवन के विकास की सीढ़ियों पर चढ़ते हुए क्या कभी किन्हीं बीहड़ खाइयों से घिरे? उन्हें कैसे उलाँघा?

स्वामी आत्मानन्द : ऐसा है कि इसके लिए एक ऐसे व्यक्ति का साथ बहुत जरूरी है, जो हमसे अनुभव

में आगे हो। ऐसे व्यक्ति को अध्यात्म की भाषा में गुरु कहते हैं। किसी व्यक्ति का जीवन मैं समझता हूँ ऐसा नहीं होगा कि जिसमें सीधी सड़क होती है। तो उतार-चढ़ाव होते हैं। और जैसा अभी आपने कहा उसमें खाइयाँ होती हैं, गड्ढे होते हैं, गिरने का डर होता है, मनुष्य को ठोकर भी लगती है। तो यह जो है, बड़ा बीहड़ रास्ता है। पर यदि गुरु की कृपा हो जाये, अच्छे जनों का साथ मिल जाये, तो यह रास्ता सुलभ हो जाता है। आखिर हम इसको इस दृष्टि से देखते हैं कि हिमालय की चोटी पर जाने से क्या लाभ है? मनुष्य आखिर जाने की चेष्टा करता है, क्यों करता है? इतना साहसिक कदम क्यों उठाता है? दूसरों की दृष्टि में भले लगे कि कितने मूर्ख हैं, वहाँ जाकर मर रहे हैं, कितने लोग मर गये? कोई हिमालय पर विजय नहीं पा सका, परन्तु फिर भी लोग ऐसे कुछ न कुछ रहे जो जाने के लिए मचलते रहे, जो गये। प्राणों से हाथ भी धोना पड़ा, परन्तु फिर भी अन्य लोग थे जिन्होंने हिम्मत नहीं छोड़ी और आखिर हिमालय के शिखर पर पहुँच भी गये और आज भी पहुँच रहे हैं। यह जो है, तो उसका मूल्यांकन हम तो नीचे बैठकर नहीं कर सकते। यही कह सकते हैं कि बड़े जीवट के आदमी हैं।

विक्रम कुमार : यानी एक हिम्मत?

स्वामी आत्मानन्द : हिम्मत—एक लक्ष्य। जो लक्ष्य दूसरे की दृष्टि में महत्वहीन हो, अर्थहीन हो; पर उनके लिए तो सारे जीवन का अर्थ उसी में भरा है। आखिर वह भी एक जीवट का काम है। तो ठीक ऐसा ही माना जा सकता है कि यहाँ पर बहुत जोखिम आते हैं, कठिनाइयाँ बहुत होती हैं, परन्तु ऐसे लोग मिल जायें, जो उस रास्ते से गये हैं, रास्ते का जिनको पता है, तो वे हमें बता देते हैं या हाथ पकड़कर उन गड्ढों में गिरने से बचा लेते हैं और रास्ता प्रदर्शित कर देते हैं। ऐसे को ही हम सन्त-महात्मा कहते हैं। या विशिष्ट ऐसे किसी सन्त-महात्मा से योग हो गया, तो हम कहते हैं, ये गुरु हैं—रास्ता दिखाने वाले, पथ-प्रदर्शक। ऐसे मिल जाने से यह बीहड़ रास्ता भी आसान हो जाता है।

विक्रम कुमार : यह बतलाइये, एक सामान्य मनुष्य-जीवन आप किस प्रकार—किस रूप में देखते हैं?

स्वामी आत्मानन्द : कैसे?

विक्रम कुमार : क्या जो आपने सुविधाओं को ठुकरा दिया, वह सामान्य मनुष्य? क्या जो सुविधाओं में जी रहा है, वह सामान्य मनुष्य? क्या दोनों के बीच पशोपेश में है, वह सामान्य मनुष्य? कौन-सा सामान्य मनुष्य?

स्वामी आत्मानन्द : सामान्य उसे कहते हैं कि जो अपने हाल से खुश है। उसको सामान्य कहेंगे कि जिसमें कोई जीवट की बात नहीं है। जो जैसा है; वैसा चलने में विश्वास करता है; तनिक-सी बाधा आयेगी, तो हार मान लेता है; थोड़ी-सी कठिनाइयाँ-मुसीबतें आयेंगी, तो रोने लगता है—इसको हम सामान्य मनुष्य कहते हैं। कि कहीं से भी प्राकृतिक विपदा आये, जिसमें टूट जाता है, उसको हम सामान्य मनुष्य कहते हैं।

विक्रम कुमार : आप स्वयं को सामान्य मनुष्य कहना चाहेंगे?

स्वामी आत्मानन्द : हम सामान्य मनुष्य के रूप में तो पैदा ही हुए हैं।

विक्रम कुमार : नहीं, क्या इस मनुष्य-जीवन के मोह को छोड़कर, इससे भी अधिक श्रेष्ठ जीवन को जी रहे हैं?

स्वामी आत्मानन्द : मनुष्य-जीवन का मोह तो छूटा ही नहीं है। हम तो यह कहते हैं कि हमें ठीक मनुष्य बनना है। अभी तो हमारे भीतर में पशु-भाव है। असल मनुष्य वही है, जिसने अपने पशु-भाव को जीत लिया है। बहुत सामान्य भाषा में कहें कि जैसे मनुष्य पैदा हुआ, उसमें पाशविक वृत्तियाँ तो हैं ही। यथार्थ मनुष्य वही है, जिसने अपनी पाशविक वृत्तियों पर विजय पा ली है। जैसे, मैं सामान्य मनुष्य हूँ, मुझमें चोरी की इच्छा

होती है कि नहीं होती ? होती है। तो जब मेरे भीतर चोरी की यह प्रवृत्ति आती है, तब मैं क्या करता हूँ— उससे ऊपर उठने की चेष्टा करता हूँ या नहीं करता, या चुरा लेता हूँ ? मित्र की एक सुन्दर घड़ी देखी। इच्छा हुई कि चुरा लूँ, पर अपने को रोकता हूँ कि नहीं रोकता ? प्रश्न यह उठता है। यदि मैं अपने को रोकता हूँ, तो क्यों रोकता हूँ ? कुछ मूल्यों में मेरा विश्वास है। उन मूल्यों के कारण अपने को रोकता हूँ। यह जो मैंने अपने को रोक लिया, तो जो सामान्य जीवन मैं जी रहा था, उसमें जो प्रवृत्ति आयी, मैं कुछ तो ऊपर उठा। इसी प्रकार मनुष्य के भीतर में कितनी ऐसी वृत्तियाँ हैं, जो पाशविक हैं, पर हम तो रोकते हैं। पशु के भीतर में कामवासना आती है, तो उसको तो लज्जा नहीं होती, वह तो सबके सामने ही अपनी कामवासना की पूर्ति करता है। मनुष्य, पशु से भिन्न नहीं, उसमें भी कामवासना आती है, पूर्ति चाहता है, पर वह अपने को रोकता है। यह जो रोकने की प्रवृत्ति आयी, कहाँ से आयी ?

विक्रम कुमार : क्या मनुष्य-जीवन अन्तिम नहीं है ?

स्वामी आत्मानन्द : हम तो इसी को अन्तिम कह रहे हैं। मनुष्य-जीवन का वही अन्तिम छोर है, जहाँ पर पाशविक भावनाओं पर पूरी तरह से हमने विजय पा ली, बस।

विक्रम कुमार : इससे भी अधिक कहीं बेहतर जीवन है ?

स्वामी आत्मानन्द : हम तो नहीं मानते। हम तो इसी को सबसे ऊँचा जीवन मनुष्य का मानते हैं, जहाँ पर सारी वासनाओं की सामग्री के होते हुए भी, उसका मन चलित नहीं होता है। इतना नियन्त्रण उसने अपने ऊपर हासिल कर लिया है, इससे बढ़कर हम और किसी जीवम की कल्पना नहीं करते।

विक्रम कुमार : चर्चा यह चल रही थी कि रामकृष्ण मिशन से, एक विचार लेकर जुड़े—

स्वामी आत्मानन्द : यह तो बड़ी लम्बी घटना है। उस समय सेन्ट पॉल हाई स्कूल, रायपुर में पढ़ते थे–नवीं कक्षा में। हमारा एक सहपाठी था। नाम से आप समझ सकते हैं बंगाली था—दिलीप कुमार गुहा। एक दिन मैं उसकी किताब लेकर ऐसे ही पन्ने पलटने लगा। देखा कि वह कोर्स की किताब तो नहीं थी। उसके भीतर एक तिरंगा चित्र, पोस्टकार्ड साइज का, स्वामी विवेकानन्द का मुझे मिला। बहुत सुन्दर छपा हुआ। बाहर कहीं छपा था। यह मैं इसलिये समझ पाया कि नीचे लिखा था— स्वामी विवेकानन्द, अँग्रेजी में। शिकागो पोज जिसको कहते हैं। विश्व धर्म सम्मेलन जो शिकागो में हुआ था, १८९३ में। उस समय जो लिया गया था, वही फोटो। हाथ बाँधे खड़े हैं, सिर पर फेंटा है, तेजस्वी आँखें-भंगिमा, मुखमण्डल दीप्त—वह। यह पहली बार स्वामी विवेकानन्द का छायाचित्र देखा। नीचे लिखा था स्वामी विवेकानन्द और उसके भी नीचे लिखा था अँग्रेजी में एक वाक्य—[ओल्ड रिलीजन सेड ही वाज एन एथिइस्ट हू डज नॉट बिलिव्ह इन गॉड, न्यू रिलीजन सेज ही इज एन एथिइस्ट हू डज नॉट बिलीव इन हिमसेल्फ।—] पुराने धर्म कहते हैं, वह नास्तिक है, जो ईश्वर में विश्वास नहीं करता; नया धर्म कहता है, वह नास्तिक है, जो अपने-आपमें विश्वास नहीं करता।— पढ़ते ही ऐसा लगा कि रगों में बिजली कौंध गयी। पूछा सहपाठी से—अरे! यह किनका चित्र है ? उसने कहा, तुम पढ़ नहीं पा रहे हो ? मैंने कहा पढ़ तो रहा हूँ—स्वामी विवेकानन्द। पर ये हैं कौन ? उसने कहा कि मुझे भी तो अधिक पता नहीं है। वापस जाते समय, चलो घर से चलना, पिता जी को शायद अधिक मालूम हो। हम लोग लौटते में उसके घर गये, उसके पिता जी से भेंट की। उनसे पूछने पर उन्होंने कहा कि देखो बेटे, हमें भी ज्यादा नहीं मालूम। रामकृष्ण परमहंस नाम के बड़े महात्मा हो गये बंगाल में, उनके ये शिष्य स्वामी विवेकानन्द और ये अमेरिका गये, तो वहाँ पर हिन्दू धर्म की पताका को सबसे ऊपर फहरा दिया, तो ऐसे ये हैं। इनके बारे में हमें और विशेष नहीं मालूम। तो

स्वामी विवेकानन्द के साथ मेरा पहला परिचय उसी पोस्टकार्ड के माध्यम से हुआ। ऐसा लगा कि यह किस देवता का चित्र है ? उनका वह जो जीवन में पहला वाक्य पढ़ा—ऐसा लगा कि अपने-में विश्वास करने का पाठ सिखाने वाला यह कौन नया संन्यासी—क्रान्तिकारी विचारक है ? तो जब तक हम रायपुर में रहे, तब तक तो उस साहित्य का विशेष पता नहीं चल पाया, जिसे विवेकानन्द-साहित्य के नाम से पुकारते हैं। जब नागपुर आये, तो फिर धीरे-धीरे रामकृष्ण आश्रम के सम्पर्क में आये। यह साहित्य मिला पढ़ने के लिए। संन्यासी लोगों से मुलाकात करते रहे। जब छः साल तक नागपुर में रहे, तो धीरे-धीरे हमारा मन भी इस ओर मुड़ता गया। ऐसा लगा कि ठीक है, यह जीवन यदि हम दूसरों के लिए जी सके, देश के लिए बिता सके, समाज के लिए खपा सके, तो उससे बढ़कर और क्या बात होगी ? तो वह जो सम्पर्क आया इस प्रकार से।

विक्रम कुमार : स्वामी जी, हमें अपने जीवन को जीने के लिए भी जीवन दिया गया है। जैसे यह प्रक्रिया होती है कि उसमें विवाह भी होता है, तो विवाह की वैचारिक प्रक्रिया पर भी चर्चा करें।

स्वामी आत्मानन्द : वैचारिक प्रक्रिया का मतलब यह है कि ठीक है बहुत कम लोग ऐसे होते हैं, मैं ऐसा मानता हूँ, जिन्हें विवाह की उतनी आवश्यकता नहीं होती है। हम ऐसा कहेंगे कि बहुत बड़ा प्रतिशत उन लोगों का है, जिनके लिये विवाह अनिवार्य हो जाता है। इसलिए अनिवार्य हो जाता है कि वे अपनी शारीरिक प्रवृत्तियों का दमन करने में समर्थ नहीं होते। पर इन लोगों से इनकार नहीं किया जा सकता, जो समाज में होते हैं—आते हैं, जिनके भीतर यह क्षमता होती है कि वे अपनी शारीरिक आवश्यकताओं का दमन कर सकें। यह बिल्कुल सम्भव है, क्योंकि इतिहास हमें बताता रहा है और केवल भारत का ही नहीं, विश्व का इतिहास कि ऐसे मनुष्य होते रहे हैं, भले ही वे इने-गिने रहे हों। ऐसे जो लोग होते हैं, इनको मैं संन्यास का अधिकारी मानता हूँ।

विक्रम कुमार : मैं जानना यह चाहता हूं कि यह जो शारीरिक विवशता, लेकिन क्या इसका कोई वैचारिक स्तर भी है ?

स्वामी आत्मानन्द : यह तो है ही। वैवाहिक जो संस्था है उसके पीछे मूल वृत्ति यही है कि मनुष्य अनिबंन्ध न हो। एक सामाजिक व्यवस्था के लिए, यह जो विवाह संस्था है, कायम की गयी। वह तो हम पूरी तरह से सहमत हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चार पुरुषार्थ माने गये हैं। मोक्ष रूपी जो अन्तिम पुरुषार्थ है, वह इन तीनों के माध्यम से ही मिलता है। यानी अर्थ को भी पुरुषार्थ कहा, मोक्ष और काम को भी। अर्थ का मतलब केवल पैसा नहीं। अर्थ का तात्पर्य, जो भी सत्ता प्रदान करें। धर्म भी सत्ता प्रदान करता है, इसलिए वह भी अर्थ है। राजनीति भी सत्ता प्रदान करती है, इसलिए वह भी अर्थ है, जैसे कौटिल्य का अर्थशास्त्र। वह तो ईक्नॉमिक्स नहीं है। अर्थशास्त्र यानी सत्ता का शास्त्र। तो यहाँ पर जो माना गया कि अर्थ भी जीवन की बहुत बड़ी प्रवृत्ति है।

विक्रम कुमार : मनुष्य तो बढ़ेगा इसमें, लेकिन विचार को व्यापक बनाने के लिए विवाह संस्था क्या करती है—विचारोत्तेजकता के लिए ?

स्वामी आत्मानन्द : विवाह संस्था के माने यह है कि मनुष्य कम से कम कहीं पर अपने स्वार्थ से ऊपर उठकर बढ़ना तो शुरू करता है। आखिर में माता-पिता विवाह संस्था से ही तो बनते हैं। मनुष्य उसके माध्यम से केवल अपने लिए नहीं, बल्कि दूसरों के लिए जीने की चेष्टा करता है। समाज में अपने को बाँटने की कोशिश करता है। तो वैचारिक स्तर तो यही हुआ कि विवाह संस्था हमें एक सामाजिक संस्था के रूप में कायम रखने में मदद देती है। तो हमने कहा कि विवाह के माध्यम से मनुष्य अर्थ और काम की सिद्धि करता है।

ठीक है, धर्म अंकुश के रूप में काम करे, अर्थ और काम की प्रवृत्तियाँ तो उद्दाम नदी की धारा के समान है। यदि कोई दिशा न हो, तब तो बाँध को तोड़ कर सर्वत्र हाहाकार कर दें। तो इसके लिए वह धर्म मानो दिशा देता है। तो धर्म से नियन्त्रित, ऐसा अर्थ और काम जब दोनों चलता है, तो हम मोक्ष की ओर जाते हैं। यह हमारे यहाँ की कल्पना है। यह वैचारिक आधार है।

विक्रम कुमार : विवाह की संकल्पना और पवित्रता को आपने साथ-साथ रेखांकित किया है, लेकिन जानना चाहूँगा कि आपने तो उसका त्याग किया ?

स्वामी आत्मानन्द : तो क्या हुआ ? समाज का तो नहीं किया। इसका त्याग किया है।

विक्रम कुमार : इसे स्वीकार क्यों नहीं किया ?

स्वामी आत्मानन्द : इसलिये स्वीकार नहीं किया कि मनुष्य वैवाहिक संस्था को स्वीकार करने पर थोड़ा तो बँध जाता है और हमने पहले ही कहा था कि जिस व्यक्ति के भीतर में जितनी क्षमता हो कि अपनी शारीरिक प्रवृत्तियों को अंकुश में ला सके, तो वह इस संन्यास का अधिकारी है। जहाँ पर वह केवल पारिवारिक बन्धन में नहीं पड़ता है, वहाँ से ऊपर उठकर एक बृहत्तर पैमाने पर समाज को दिशा दे सकता है कह लें या समाज की अधिक सेवा कर सकता है।

विक्रम कुमार : यानी वहाँ शारीरिक प्रवृति ज्यादा है, वैचारिक प्रवृत्ति कम ?

स्वामी आत्मानन्द : कम है।

विक्रम कुमार : मैं यही जानना चाह रहा था कि वहाँ आदमी वैचारिक प्रक्रिया को पूरा निभा नहीं पाता ?

स्वामी आत्मानन्द : निभा इसलिए नहीं पाता कि उसके सामने कई प्रकार की बाध्यताएँ हैं। एक विचार के रूप में तो उसे सही मानता है, पर जब व्यवहार में उसको उतारने का समय आता है, तो अपने को असफल पाता है या उसको ऐसा लगता है कि मैं अभी किन्हीं कारणों से घिरा हुआ हूँ, जिनसे इस विचार को मूर्त्त रूप नहीं दे पा रहा। तो जिसमें ऐसी क्षमता हो कि उन दो सोपानों को बिल्कुल कूद कर पार कर सके तो बहुत अच्छी बात है। ऐसे क्षमतावान लोगों के लिए संन्यास का विधान शास्त्रों ने किया है।

विक्रम कुमार : सभा में प्रवचन और व्याख्यान आप देते हैं, तो क्या आप देखते हैं कि यह कहते-कहते जीवन का सारा सफर कट रहा है और न वचन निभा, न व्याख्या सधी ?

स्वामी आत्मानन्द : होता है, जरूर होता है। अब इसमें कुछ लोग तो जरूर प्रेरणा पाते हैं, उनको ऐसा लगा कि इसके माध्यम से अगर उनको कहीं कोई रास्ता दिखायी देता है। तो यह जो प्रवचन और व्याख्यान होते हैं, केवल एक सामान्य तौर पर। इसमें ऐसा नहीं मानना चाहिये कि किसी को भी पूरा रास्ता दिखा देते हैं। अगर कोई ऐसा मानता होगा प्रवचन देने वाला, तो वह गफलत में है। सुनने वाला ऐसा मानता होगा, तो वह भी गफलत में है। यह तो ऐसा है कि एक दिशा हमको मिले। अगर मिलती है, तो आकर सत्संग करो, पूछो और जो शंका होती है, उसको दूर करो। यह तरीका है। तो प्रवचन और व्याख्यान के माध्यम से शंकाओं का समाधान हो जायेगा और मनुष्य अपना रास्ता पा लेगा, इसको हम नहीं मानते हैं, पर यह जरूर मानते हैं कि इसके माध्यम से प्रेरणा मिलती है। हमें भी जो प्रेरणा मिली थी, ऐसे ही किसी प्रवचन को सुनकर। फिर हम खोजने में प्रवृत्त हुए। इस प्रकार से पहुँचते-पहुँचते अपना रास्ता तय किया। हर आदमी को अपने प्रयत्न से अपना रास्ता तय करना पड़ता है। प्रवचन, व्याख्यान, पुस्तकें—यह सब उसमें सहायक बन सकते हैं।

विक्रम कुमार : अच्छा, जैसे चन्दन का एक तिलक हम अपने माथे पर लगा लेते हैं, ऐसे स्वयं को भी एक

उद्‌बोधन दें।

स्वामी आत्मानन्द : जब स्वयं को उद्‌बोधन देंगे, तो उसके लिए दूसरे व्यक्ति की आवश्यकता ही नहीं है। जो स्वयं का उद्‌बोधन है, वह अपने आपको उद्‌बोधन है।

विक्रम कुमार : अपने प्रथम प्रवचन की याद ताजा करें—कब दिया—कहाँ ?

स्वामी आत्मानन्द : यह तो ख्याल नहीं है।

विक्रम कुमार : अपने दिन भर को किस प्रकार व्यवस्थित करते हैं ?

स्वामी आत्मानन्द : यह सब काम हैं तरह-तरह के। कार्यभार ही इतने हैं।

विक्रम कुमार : अच्छा, जैसे पुनर्जन्म, ऐसे पुनर्मृत्यु भी कुछ होती है ?

स्वामी आत्मानन्द : अब आप एक नया शब्द बना दीजिये, अभी तक नहीं बनाया गया होगा।

विक्रम कुमार : पुनर्जन्म की बात तो कहते हैं, लेकिन पुनर्मृत्यु को कैसे कहना चाहेंगे ?

स्वामी आत्मानन्द : हमें तो पता नहीं, हमें तो नहीं समझ में आता। यह तो आपके दिमाग की उपज है। इसलिए खोज कीजिए।

विक्रम कुमार : ऐसा कोई क्षण अपने जीवन का, जिसे क्रियान्वित करना चाहते रहे और क्रियान्वित कर भी लिया ?

स्वामी आत्मानन्द : वह क्षण क्या होगा ? क्षण तो चलता ही रहता है। जब क्षण कहा, तो वह तो पकड़ में आयेगा नहीं, वह तो बदल गया।

विक्रम कुमार : हर क्षण को क्रियान्वित करना चाह रहे हैं ?

स्वामी आत्मानन्द : वह तो सतत् चल रहा है। जैसे एक योजना ली—पूरी होती है, फिर दूसरी योजना लेते हैं।

विक्रम कुमार : उसको आप योजना कह लें।

स्वामी आत्मानन्द : यह तो सतत् चल रही है। यह तो प्रवाह के समान है। ऐसे तो कितनी योजनाएँ चल रही हैं और जब हम संस्था में रहकर काम करते हैं, तो यह तो योजनाओं से बनी हुई है—भिन्न-भिन्न। कि रायपुर को लेकर सोचा ये काम करेंगे, काम हो गये, ठीक है। फिर सोचा गाँव में करेंगे। जितने गाँव में इच्छा थी, उन गाँवों में हो गयी योजना पूरी। इसके बाद लगा कि बस्तर के बीहड़ जंगलों में लेंगे, तो अबूझमाड़ का क्षेत्र लिया, वहाँ पर साल भर पहले से यह काम शुरू है और यह तो लम्बी योजना है। अब जितने गाँवों को लपेट सकें अपनी योजना के अन्तर्गत। यह तो चलती रहेगी और हर मुकाम में जब योजना पूर्ण होती है, आनन्द तो होता ही है कि उद्देश्य लेकर हमने एक काम किया। ठीक है, भौतिक दृष्टि से वह पूरा हुआ। वैचारिक स्तर पर और भावात्मक दृष्टि से वह कहाँ तक पूर्णता को प्राप्त करता है, उसके लिए कोई सीमा नहीं है। वह तो सब चलता ही रहेगा।

(ऋतुचक्र से साभार)

अर्धनारीश्वर शिव एवं स्वामी विवेकानन्द

स्वामी ब्रह्मेशानन्द
रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

(१)

सामान्यतः भगवान शंकर की पूजा शिव लिंग के रूप में की जाती है। शिव लिंग के अतिरिक्त भी भगवान शंकर के अनेक रूप, मूर्तियाँ एवं विग्रह हैं। जटाजूट धारी, त्रिनेत्र, भस्माच्छादित, समाधिस्थ भगवान शंकर की मूर्ति इन विभिन्न विग्रहों में सबसे अधिक प्रचलित है। माँ काली की मूर्ति के साथ उनके चरणों में शवरूपी शिव भी सभी के परिचित हैं। ताण्डव नृत्य करने एवं गंगावतरण के समय गंगा के वेग को अपनी जटा में झेलते हुए, ये दो और रूप हैं भगवान शिव के। अर्धनारीश्वर भी एक सुन्दर प्रतीकात्मक विग्रह है, जिसकी पूजा, आराधना कुछ भक्त करते हैं।

माँ काली के चरण तले शिव निर्गुण-निराकार ब्रह्म के प्रतीक हैं। ताण्डव नृत्य उनका संहारात्मक रूप है। भक्त, त्यागी एवं जगत् कल्याण में रत, ध्यानस्थ, योगी शिव संन्यासियों के आदर्श हैं। माँ काली के चरणों में पड़े भावातीत, निर्गुण-निराकार, "प्रपंचोशमं, शान्तं, शिवमद्वैतं", ही ध्यानस्थ सगुण-साकार अनन्त उच्चतम भावों के प्रतीक भावमय शिव के रूप में प्रकट होते हैं। इन दोनों अवस्थाओं के बीच की अवस्था के प्रतीक के रूप में अर्धनारीश्वर मूर्ति को दिया जा सकता है। इस मूर्ति के दक्षिणार्ध शिव हैं और वामार्ध पार्वती हैं। दार्शनिक भाषा में यह पुरुष एवं प्रकृति चेतन एवं जड़ के सम्मिश्रण का प्रतीक है। शास्त्रों में ब्रह्म एवं उसकी शक्ति को अग्नि एवं उसकी दाहिका शक्ति की तरह अभेद माना गया है। अर्धनारीश्वर को भी इसी तरह के ब्रह्म एवं शक्ति के अभिन्नत्व का प्रदर्शन करने वाले प्रतीक के रूप में लिया जा सकता है। ब्रह्म और जगत् के सम्बन्ध के विषय में अनेक मत प्रचलित हैं। अद्वैत वेदान्त के अनुसार ब्रह्म ही एक मात्र सत्ता है, और जगत् मिथ्या है, जो माया द्वारा निर्मित है। एक अन्य मत के अनुसार ब्रह्म और माया या शक्ति दोनों अभिन्न हैं। एक ही सत्ता के दो रूप हैं। इसी तरह की नाना दर्शन-प्रणालियाँ हैं। और कुछ ने अर्धनारीश्वर को अपने मत का प्रतिपादन करने वाले के रूप में ग्रहण किया है।

आध्यात्मिक दृष्टि से अर्धनारीश्वर भावमुख अवस्था का प्रतीक है। निर्गुण ब्रह्म एवं सगुण ब्रह्म के बीच की उस अवस्था को जहाँ विराट सर्वव्यापी अहं विद्यमान रहता है भावमुख कहते हैं। अवतारी एवं ईश्वर कोटि महापुरुष इसी अवस्था में रहकर जगत् कल्याण करते हैं। निर्विकल्प समाधि में ६ माह तक निमग्न रहने के बाद श्रीरामकृष्ण को माँ जगदम्बा से भावमुख में रहने का आदेश हुआ था। इस अवस्था में श्रीरामकृष्ण स्वयं को उस विराट अहं, उस विराट चैतन्य से अभिन्न अनुभव करते थे जिससे समग्र भावों का उद्भव होता है। यह अवस्था अद्वैत एवं द्वैत की मिलन-स्थली है, और यहाँ अवस्थित महापुरुष अपने को संसार के समस्त प्राणियों की अन्तरात्मा के रूप में अनुभव करता है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अर्धनारीश्वर कोमल एवं कठोर, पुरुषोचित एवं स्त्रियोचित, भावों के सम्मिश्रण का प्रतीक है। प्रत्येक व्यक्ति में शौर्य, वीरता, कठोरता आदि पुरुषोचित एवं कोमलता, प्रेम, करुणा आदि स्त्रियोचित भाव न्यूनाधिक मात्रा में होते हैं। सामान्यतः पुरुषों में कठोर एवं स्त्रियों में कोमल भाव अधिक रहते हैं। लेकिन अपवाद भी पाये जाते हैं। महापुरुषों के

सम्बन्ध में कहा गया है कि वे वज्र के समान-कठोर एवं कुसुम के समान कोमल होते हैं। इस अदभुत समन्वय का प्रतीक है अर्ध-नारीश्वर।

भगवान शिव वैराग्य के देवता हैं जिन्होंने आवश्यकता पड़ने पर अपनी प्रियतमा सती को क्षण भर में त्याग दिया था। लेकिन वे अनुराग के भी आदर्श हैं। भगवान शंकर के इस पक्ष को राजर्षि भर्तृहरि ने एक सुन्दर श्लोक द्वारा व्यक्त किया है।

एको रागिषु राजते प्रियतमा देहार्धधारी हरो,
नीरागेषु जनो विमुक्त ललनासंगो न यस्मात् परः
दुर्वारस्मरवाणपन्नग विष-व्याविद्धमुग्धो जनः
शेषः कामविडम्बितान्न विषयान् भोक्तुं न भोक्तुं क्षमः।

अर्थात् "रागियों में एकमात्र शिव ही सर्वश्रेष्ठ हैं जिन्होने (अर्धनारीश्वर के रूप में) अपनी प्रियतमा को अर्धांग का स्थान दिया है। रागरहित लोगों में भी ललना संग त्यागी शिव से बड़ा और कोई नहीं है। संसार के अन्य सभी लोग काम के दुर्वार बाणों के विष से पीड़ित हो विषयों को न तो भोगने में ही समर्थ हो पाते हैं और न त्यागने में।" अतः अर्धनारीश्वर प्रवृत्ति एवं निवृत्ति, आसक्ति एवं अनासक्ति, अनुराग एवं वैराग्य के मिलन का प्रतीक भी है।

उपर्युक्त विभिन्न अर्थों के अतिरिक्त अर्धनारीश्वर के दो अन्य अर्थ स्वामी विवेकानन्द ने कश्मीर भ्रमण के समय अपने शिष्यों को बताये थे। प्रथम, यह उस सत्य के साक्षात्कार का प्रतीक है जहाँ ज्ञान एवं पराभक्ति से प्राप्त त्याग एक दूसरे से मिल जाते हैं। शिवार्ध ज्ञान का एवं शक्त्यार्ध पराभक्ति का प्रतीक है, और उनका मिलन उस त्याग का प्रतीक है जो इन दोनों का समान परिणाम है। ज्ञान एवं भक्ति भिन्न एवं परस्पर विरोधी होते हुए भी अन्त में एक ही लक्ष्य को पहुँचाते हैं।

स्वामी जी के अनुसार अर्धनारीश्वर का दूसरा अर्थ है संन्यास एवं मातृ पूजा की दो महान भावधाराओं का मिलन। शिवांश संन्यास का एवं शक्त्यांश मातृपूजा का प्रतीक है। ये दो भावधाराएँ अनादि काल से पृथक् रूप में मानव समाज में प्रचलित रहीं हैं। आपात विरोधी इन दो भावधाराओं का समाज में किसी काल में मिलन हुआ होगा। उसी का प्रतीक है अर्धनारीश्वर।

स्वामी विवेकानन्द शिवावतार थे एवं हम देख चुके हैं कि भगवान शंकर के साथ उनका कितना अधिक साम्य है। क्या शिव जी के रूप विशेष, अर्धनारीश्वर के साथ भी स्वामी जी की समानता है? क्या वे भाव, गुण एवं अवस्थाएँ, जिनका प्रतीक अर्धनारीश्वर है, स्वामी विवेकानन्द में थीं? अब हम इसी प्रश्न का उत्तर खोजने का प्रयत्न करेंगे।

(२)

भावमुख में स्वामी विवेकानन्द—

स्वामी सारदानन्द जी ने "श्रीरामकृष्ण लीला प्रसंग" में श्रीरामकृष्ण की भावमुख अवस्था का विस्तृत वर्णन दिया है। सत्य तो यह है कि श्रीरामकृष्ण, स्वामी विवेकानन्द एवं माँ सारदा तीनों ही सदा द्वैत एवं अद्वैत के मिलन स्थल, जिसे भावमुख कहा जाता है, में रहते थे। तीनों के लिए अनायास ही निर्विकल्प समाधि में लीन होना सम्भव था। निराकार में लीनोन्मुख अपने मन को बाह्य जगत् में लाने के लिए उन्हें विशेष प्रयत्न करना पड़ता था। अमेरिका में स्वामी जी भाषण देते थे तो कुछ श्रोताओं को ऐसा प्रतीत होता था मानो वे अनन्त की परिधि पर खड़े हैं। उनके पीछे अखण्ड सत्ता विद्यमान है और वे उसके मुख बनकर बोल रहे हैं। स्वामी जी ने दो कविताएँ भी लिखी हैं; जो उनकी इन अपूर्व अनुभूतियों का, द्वैत और अद्वैत की मिलन भूमि का, जहाँ विराट् अहं मात्र विद्यमान रहता है, सुन्दर वर्णन करती हैं।

एकरूप, अरूप-नाम-वर्ण, अतीत-आगामी कालहीन,
देह-हीन, सर्वहीन'नेति-नेति' विराम जहाँ।
जहाँ से बहती कारण-धारा, धर उज्ज्वल वासना
उसका वारि 'अहं अहं इति' प्रतिक्षण है गरजता॥

उस इच्छा सागर से, उठती अनन्त तरंग,
कई रूप, शक्ति, गति स्थिति से युक्त।
कोटि चन्द्र सूर्य ले उस सागर से जन्म
महाघोर ध्वनि से दशदिक् करते प्रकाशित।
बैठे इसमें कितने जीव, प्राणि, सुख दुःख जरा मरण।
वही सूर्य उसी की किरण, वही सूर्य है वही किरण।

और, "समाधि" नामक कविता में

नहीं सूर्य, नहीं ज्योति, नहीं शशांक सुन्दर,
भासता व्योम में छाया सम विश्व चराचर।
अस्फुट चिदाकाश में, भासता जगत् संसार,
उठता तैरता डूबता, 'अहं' स्रोत में निरन्तर।।
धीरे धीरे छाया दल महालय में हुआ प्रविष्ट
बहती केवल "मैं मैं," धारा प्रतिक्षण।
वह धारा भी हुई बन्द शून्य में शून्य विलीन
"अवांग मनस गोचरम्" वही समझे जो जाने।

अपनी प्रसिद्ध कविता "शान्ति" में भी स्वामी जी दो विपरीत अवस्थाओं एवं भावों की इस मिलन स्थली का मार्मिक चित्र प्रस्तुत करते हैं।

मानव जाति के साथ एकात्मता स्थापित कर उसके दुःख-कष्ट को स्वयं अनुभव कर पाना भी भाव मुख अवस्था का एक लक्षण है। श्रीरामकृष्ण ने दूब पर चल रहे व्यक्ति के पदाघात एवं नाव पर एक मांझी द्वारा दूसरे को मारी गयी लाठी के प्रहार का स्वयं अनुभव इस अवस्था में ही किया था। स्वामी विवेकानन्द के जीवन में भी इस प्रकार की अनुभूति के दृष्टान्त पाये जाते हैं। एक बार अर्धरात्रि को वे गहरी वेदना के कारण नींद से जाग उठे। बाद में जाना गया कि सूदूर किसी देश में ठीक उसी समय भूकम्प से सैकड़ों लोगों के हताहत होने से उनकी पीड़ा का अनुभव करने के कारण स्वामी जी को ऐसा हुआ था।

कोमल व कठोर भावों का मिलन—

कोमल व कठोर भावों का सम्मिश्रण सभी महापुरुषों में देखा जाता है। उनका चित्त "वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि" होता है। वे स्वयं की इच्छा वासनाओं के प्रति कठोर और जगत् के दुःख संतप्त प्राणियों के प्रति अत्यन्त कोमल होते हैं। वे मोहपाश को काटने में सदा तत्पर रहते हैं, और दूसरों के प्रति करुणा से विगलित भी हो जाते हैं। इन दो भावों का मिलन श्रीरामकृष्ण में अद्भुत मात्रा में पाया जाता है। एक ओर वे पुरुष सिंह थे, कर्म-कठोर थे एवं अनासक्ति, त्याग, वैराग्य के ज्वलंत उदाहरण थे, तो दूसरी ओर उनमें नारि-सुलभ कोमलता भी थी। उनके पुरुषोचित गुणों ने एक ओर जहाँ विवेकानन्द जैसे नर श्रेष्ठों को उनकी ओर आकृष्ट किया था, वहीं उनके स्त्रियोचित गुणों के कारण महिला भक्त-वृन्द उन्हें स्वयं का आदर्श समझती थीं। गिरीश चन्द्र घोष ने तो एक दिन पूछ ही लिया था कि आप पुरुष हैं या स्त्री।

स्वामी विवेकानन्द में शौर्य ,वीर्य, तेज, साहस, बल आदि पुरुषोचित गुणों की अधिकता होते हुए भी स्त्रियोचित गुण भी विद्यमान थे। यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि स्वामी विवेकानन्द बाहर से कठोर और भीतर से कोमल थे। एक बार उन्होंने दो पत्थरों को एक दूसरे से ठोंकते हुए भगिनी निवेदिता से कहा था कि वे उन पत्थरों के समान कठोर हैं। इस पर अपनी व्यक्तिगत प्रतिक्रिया व्यक्त करती हुई भगिनी निवेदिता लिखती हैं कि इतने पर भी स्वामी जी अत्यन्त कोमल थे। अज्ञानी दरिद्र भारतवासियों के प्रति करुणा एवं गहरी सहानुभूति के कारण ही वे विदेश गये थे, तथा वहाँ भी भारतवासियों की दुर्दशा पर आंसू बहाया करते थे।

आसक्ति एवं अनासक्ति का मिलन—

सामान्यतः व्यक्ति अपनी प्रिय वस्तु, कार्य अथवा व्यक्ति से आसक्त होकर बंध जाता है। आसक्ति सुख प्रदान करती है, लेकिन वही हमारे बन्धन एवं दुःख का भी कारण हो जाती है। वस्तुतः वस्तु विशेष नहीं, बल्कि उससे हम जो फलाकांक्षा करते हैं, वही हमारे बन्धन का कारण होती है। अतः फलाकांक्षा का त्याग अनासक्त

होने का, बन्धन से बचने का उपाय है। यही कर्म योग का रहस्य भी है।

आसक्ति, एकाग्रता एवं प्रवृत्ति से सुख प्राप्त होता है, लेकिन अधिकांश व्यक्तियों का मन भोग्य पदार्थ अथवा अभीप्सित कर्म में इतना एकाग्र नहीं हो पाता कि वह उससे पूरा आनन्द प्राप्त कर सके। कामना-वासना की उत्पत्ति से मन चंचल हो जाता है और चंचल मन में आत्मानन्द का प्रतिबिम्ब नहीं हो सकता। विषय सुख के साथ अप्राप्ति की आशंका, नष्ट होने का भय आदि अनेक प्रतिबन्धक लगे रहते हैं। यही कारण है कि सांसारिक लोग विषय सुख की इच्छा करते हुए भी, आसक्त होते हुए भी एकाग्रता के अभाव के कारण पूर्ण सुख नहीं पाते। परमानन्द का आस्वादन करने वाले भगवान शंकर का दृष्टान्त देते हुए भर्तृहरि कहते हैं, कि भय, आशंका, प्रतिस्पर्धा, ईर्ष्या आदि के अभाव के कारण भगवान अपनी प्रिया के साथ संपूर्ण रूप से मिलित हो पाते हैं।

स्वामी विवेकानन्द अपने प्रसिद्ध व्याख्यान "कर्म और उसका रहस्य" में आसक्ति और अनासक्ति दोनों के महत्व को अत्यन्त स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करते हैं। उनका कथन है कि हम में तीव्र एकाग्रता एवं किसी भी कर्म से पूरी तरह चिपकने, आसक्त होने की क्षमता होनी चाहिए। उसके साथ ही साथ, हममें, इच्छानुसार उससे हटने की, वस्तु अथवा कर्म को स्वेच्छा से त्यागने की भी क्षमता होनी चाहिए। इसका परिणाम यह होगा कि हम एक क्षण एक कर्म में तो दूसरे ही क्षण दूसरे कर्म में मनोनियोग करने में समर्थ होंगे। स्वामीजी चाहते थे कि रामकृष्ण मठ के संन्यासियों में ऐसी क्षमता हो कि वे एक क्षण ध्यान करने में समर्थ हों तो दूसरे ही क्षण खेतों में जाकर हल चला सकें। तीसरे क्षण शास्त्रों के गूढ़ तत्वों का विवेचन कर सकें, तो उसके बाद ही बाजार में जाकर खेत में पैदा हुआ धान बेच सकें। मन को मिट्टी के लोंदे की तरह स्वेच्छा से एक स्थान पर लगाना एवं वहाँ से हटाकर दूसरे स्थान पर लगाने की क्षमता का होना ही आसक्ति एवं अनासक्ति के समन्वय का अर्थ है।

स्वामी विवेकानन्द में ऐसी क्षमता अद्भुत मात्रा में थी। वे ध्यान में ऐसे निमग्न हो जाया करते थे कि उन्हें बाह्य जगत् की सुध ही नहीं रहती थी। एक बार उनका सारा वदन मच्छरों से छा गया था, लेकिन वे ध्यान में ऐसे निमग्न थे कि उन्हें मच्छरों के दंश का पता ही न चला। इसी ध्यान प्रवण एकाग्र मन को वे जब किसी पुस्तक को पढ़ने में लगाते तो किसी के पुकारने पर उसकी आवाज भी न सुन पाते। और यही मन वे बन्दूक से निशाना लगाने, प्रवचन देने आदि में भी अनायास लगा सकते थे।

ज्ञान व भक्ति का समन्वय—

संन्यास और वैराग्य को ज्ञान का साधन माना गया है। ज्ञानयोगी साधक सर्व-कर्म-त्याग, संवेषणा त्याग, एवं इहकाल एवं परकाल के सभी भोगों से विरत होकर तत्त्व चिन्तन करता है। लेकिन एक दूसरा स्वाभाविक त्याग भी है, जो ज्ञान के परिपक्व होने पर साधक के जीवन में उदित होता है। "ईशावस्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत् तेन त्यक्तेन भुंजीथा ··।" ईशावास्योपनिषद् के इस प्रथम श्लोक में उसी त्याग का उल्लेख है, जो सर्वत्र परमात्मा की सत्ता के साक्षात्कार से पैदा होता है। गीता में भी कहा गया है कि ज्ञानाग्नि सभी कर्मों को भस्म कर देती है। ज्ञानी के सभी कर्म त्याग हो जाते हैं। भक्ति मार्ग में सामान्यतया त्याग एवं वैराग्य की इतनी आवश्यकता नहीं होती जितनी ज्ञान मार्ग में होती है। लेकिन उसमें त्याग अपने आप अधिक स्वाभाविक रूप से हो जाता है। परमात्मा से प्रेम करने से संसार अपने आप छूट जाता है।

स्वामी विवेकानन्द के जीवन में हम ज्ञान एवं भक्ति, दोनों की चरमावस्था एवं उनके सामान्य फलत्याग को स्पष्ट रूप से पाते हैं। सन् १९०० ई० में कैलिफोर्निया से लिखे पत्र में वे लिखते हैं कि "निर्वाण मेरे सम्मुख है,

वस्तुएं परछाईं की तरह दिखाईं दे रही हैं, एवं जगत् अपना द्वैतात्मक रूप खो रहा है।" ये एक ज्ञानी के उद्‌गार हैं। इस पत्र में ही इस अनुभूति का परिणाम, कर्त्तापन का त्याग, बन्धनों से मुक्ति एवं चिर शान्ति का भी वर्णन है। इसी तरह पराभक्ति की अवस्था भी स्वामी जी ने प्राप्त की थी। उनमें बाहर ज्ञान था और भीतर भक्ति। वे प्रयत्नपूर्वक भक्ति को दबाकर रखते थे जिससे कि वे श्रीरामकृष्ण का कार्य कर सकें। एक बार रामकृष्ण मिशन की स्थापना के विषय को लेकर उनके एक गुरुभाई ने उनका विरोध किया था। इस पर वे उत्तेजित हो गये थे, उनकी वाणी अवरुद्ध हो गयी थी, एवं शरीर भावावेग से काँपने लगा था। अपने आवेग का संवरण करने के लिए वे उस स्थान से उठकर अपने कमरे में चले गये थे। लौटकर आने पर उन्होंने स्वीकार किया था कि जब हृदय में भक्ति का विकास होता है तो हृदय इतना कोमल हो जाता है कि वह फूल का आघात भी सहन नहीं कर सकता। लेकिन ऐसी अवस्था में कार्य नहीं हो सकता। इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वामी जी के जीवन में ज्ञान एवं पराभक्ति का अद्‌भुत मिलन एवं उनके सामान्य फल त्याग का विकास हुआ था।

संन्यास एवं मातृपूजा की भावधाराओं का मिलन—

संन्यास धर्म एवं भगवान की जगन्माता के रूप में पूजा, इन दोनों की प्रतिष्ठा रामकृष्ण अवतार का विशेष प्रयोजन था। श्रीरामकृष्ण ने तोतापुरी से विधिवत् संन्यास ग्रहण किया था, एवं वे संन्यासियों के राजा एवं सर्वोत्तम उदाहरण स्वरूप थे। सामान्यत: संन्यासी नारी का सर्वथा त्याग करता है। स्वयं श्रीरामकृष्ण कहते थे कि संन्यासी को स्त्री का चित्र भी नहीं देखना चाहिए। इतना होते हुए भी वे नारी से घृणा नहीं करते थे। एक बार जब उनके शिष्य स्वामी तुरीयानन्द जी ने उन्हें कहा कि वे नारी से घृणा करते हैं तो श्रीरामकृष्ण ने डांटते हुए कहा कि नारी की माता के रूप में पूजा करनी चाहिए। स्वयं श्रीरामकृष्ण ने भी यही किया था। वे माँ काली के उपासक थे। उन्होंने भैरवी ब्राह्मणी को अपने गुरु के रूप में वरण किया था तथा माँ सारदा की पूजा की थी। श्रीरामकृष्ण बहुत उत्सुक थे कि स्वामी विवेकानन्द भी संन्यास के आदर्श को स्वीकार करने के साथ ही साथ मातृ पूजक बनें। यही कारण है कि जिस दिन स्वामी जी ने माँ काली को स्वीकार किया था, उस दिन वे विशेष रूप से आनन्दित हुए थे।

स्वामी विवेकानन्द प्रारम्भ में श्रीरामकृष्ण के त्याग, वैराग्य से आकृष्ट अवश्य हुए थे, लेकिन वे माँ जगदम्बा को स्वीकार नहीं करते थे। बाल्य काल से ही उनका संन्यास के प्रति झुकाव था। और सबसे रोचक बात तो यह है कि जिस दिन उन्होंने माँ जगदम्बा को स्वीकार किया उस दिन उनसे मांगा भी तो ज्ञान, भक्ति, विवेक व वैराग्य जो प्रकारान्तर से संन्यास ही मांगना हुआ। माँ जगदम्बा की कृपा संन्यास की सिद्धि के लिए आवश्यक है। नारि जाति में मातृत्व का दर्शन संन्यासी को अपने व्रत को पालने में अत्यधिक सहायक होता है। यही कारण है कि संन्यास एवं मातृपूजा की पुरातन एवं जन मानस में प्रचलित इन दो पृथक् भाव धाराओं के समन्वय को रामकृष्ण भावधारा में इतना अधिक महत्त्व दिया गया है।

उपसंहार—

अर्धनारीश्वर एक अत्यन्त सुन्दर समन्वयात्मक प्रतीक है, जिसके विभिन्न अर्थ हो सकते हैं। समन्वयाचार्य श्रीरामकृष्ण, जिनके जीवन में विभिन्न परस्पर विरोधी भावों का अदभुत समन्वय दिखाई देता है, इस प्रतीक के सर्वश्रेष्ठ एवं प्रत्यक्ष दृष्टान्त स्वरूप हैं। इसी तरह स्वामी विवेकानन्द के जीवन एवं चरित्र में भी हम भगवान शिव के इस रूप विशेष के अनुरूप गुण भाव एवं अवस्थाएँ पाते हैं। विरोधी भावों का समन्वय रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की एक विशिष्ट देन है, जिसे हृदयंगम करने पर हम अपना एवं जगत् का अशेष कल्याण कर सकते हैं।

कर्मयोग (२)

स्वामी वेदान्तानन्द
रामकृष्ण आश्रम, पटना

प्राचीन काल में भारतवर्ष में अनेक प्रकार के यज्ञानुष्ठान प्रचलित थे। उन यज्ञों में अनेक प्रकार के फलों की कामनाओं से देवताओं को घृत आदि पदार्थों की आहुतियाँ दी जाती थीं। वासना का त्यागकर, केवल यज्ञानुष्ठान ही नहीं, बल्कि जो सब कार्य मनुष्य करता है, वे सभी कार्य ईश्वर की प्रीति के लिए, उनके द्वारा सर्जित समस्त जीवों के कल्याण एवं सुख के सम्पादन के लिए करने का विधान किया गया है (३-९-१६)। नौवें श्लोक में, यज्ञ को ईश्वर से अभिन्न मानकर, उनकी प्रीति के लिए समस्त कार्य करने का कथन किया गया है। ईश्वर के लिए नहीं कर, जो कार्य सकामभाव से अपने सुख-भोग के लिए किया जाता है, उस कार्य के फलस्वरूप मनुष्य को बार-बार जन्म-मरण के दुःख का भोग करना पड़ता है। इस दुःख-भोग से छुटकारा पाने के लिए, कर्मफल में आसक्ति का त्याग कर समस्त कार्य ईश्वर की प्रीति के लिए करने होंगे।

केवल मनुष्य ही नहीं, सारे जीव—यहाँ तक कि सभी देवतागण भी, सुख-शान्ति से रहने के लिए परस्पर के कार्यों पर निर्भरशील रहते हैं। केवल आत्मज्ञान से सम्पन्न व्यक्तियों के अतिरिक्त, जो संसार की किसी वस्तु की आवश्यकता का अनुभव नहीं करते – उन्हें छोड़कर अन्य सभी को निश्चय ही कार्य में नियुक्त रहना होगा (३/१७-१८)। जो व्यक्ति जीव-जगत के कल्याण के लिए नहीं सोचते, केवल अपने दैहिक-सुख की प्राप्ति की चेष्टा में व्यस्त रहते हैं, उन सब हीनबुद्धि व्यक्तियों का जीवन-धारण करना व्यर्थ है (३/१६)।

इसी कारण से, दैहिक एवं मानसिक सामर्थ्य के अनुसार एवं पारिवारिक दायित्व की विवेचनाकर, प्रत्येक व्यक्ति को अपने-अपने कर्त्तव्य कर्म को निष्ठापूर्वक अनासक्त भाव से करना होगा। अनासक्त भाव से सभी कार्य करने की सामर्थ्य में ही मानव जीवन की चरम सार्थकता निहित है। जब तक शरीर के प्रति एवं सांसारिक वस्तु या व्यक्ति के प्रति ममता, यहाँ तक कि मुक्ति की कामना भी रहती है, तब तक सम्पूर्ण भाव से निष्काम होकर जीवन-यापन करना सम्भव नहीं होता (३/१९)।

मिथिला के राजा जनक ब्रह्मज्ञ महापुरुष थे। ब्राह्मण ऋषिगण भी आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए उनके उपदेश के प्रार्थी होते थे। किन्तु जनक ने राज्य शासन की भाँति जटिल कर्मों का त्याग नहीं किया। जनक का दृष्टान्त देकर श्रीकृष्ण ने अर्जुन को युद्ध करने का उपदेश दिया। संसार की सुख-शान्ति एवं बंधन, सब कुछ मनुष्य के, अपने-अपने करणीय कर्म को सुचारु रूप से करने के ऊपर निर्भर करता है। किसी योग्य व्यक्ति के द्वारा अपने करणीय कार्य की अवहेलना करने पर, उसकी देखादेखी दूसरे व्यक्ति भी अपने कार्य की अवहेलना करने लगते हैं। फलतः समाज में विश्रृंखलता उत्पन्न हो जाती है। दूसरों को कार्य में प्रवृत्त करने की आवश्यकता का विचारकर भी अर्जुन के लिए युद्ध करना उचित है; यह बात भी श्रीकृष्ण ने कही (३/२०)।

विचार शक्ति से रहित व्यक्ति जिस प्रकार अपनी सुख-सुविधा की बात को मन में रखकर काफी उत्साह के साथ अपनी पूरी शक्ति सामर्थ्य लगाकर कार्य करता है, उसी प्रकार ज्ञानी व्यक्ति के लिए भी उद्यम और आग्रह

पूर्वक सारे करणीय कर्म करना उचित है। तथापि वे बिना किसी फल-कामना के कार्य करेंगे। साधरण मनुष्य जिससे अपना-अपना कार्य कर सकें, यही दिखाने के लिए वे कार्य करते हैं (३/२५)।

यही बात फिर विशेष रूप से कही गयी है। संसार में विचारविहीन अज्ञानी व्यक्तियों की संख्या ही अधिक है। वे सुख-भोग की आशा से अनेक प्रकार के कार्य में प्रवृत्त होते हैं। इनमें से कुछ लोग अनेक प्रकार के दुःख पाकर अपने करणीय कर्म का त्यागकर संन्यासी, योगी अथवा वैरागी का वेश धारण करते हैं। किन्तु जिनके हृदय में भोगवासना प्रबल रहती है उनके द्वारा कार्य का त्याग कर देने पर समाज में अनेक प्रकार की विश्रृंखलता उत्पन्न हो जाती है। इसी से श्रीकृष्ण ने कहा—आत्मज्ञानी होने पर भी, तुम अपने उपदेश या आचरण के द्वारा भोगलिप्सु व्यक्तियों को कर्मत्याग करने को प्रेरित नहीं करो, किन्तु, आग्रह और उत्साहपूर्वक किन्तु, सम्पूर्ण अनासक्त भाव से शारीरिक एवं मानसिक श्रमसाध्य कार्य करते चलो (३/२६)।

गीता के तृतीय अध्याय में कर्मयोग विषयक जिन तत्त्वों का विवेचन हुआ है, वह कोई नया सिद्धान्त नहीं है, अत्यन्त प्राचीन काल से ही राजर्षिगण इन सब तत्वों से अवगत थे। उक्त कर्मयोग के सिद्धान्त का अनुसरणकर वे लोग अनासक्त भाव से एवं मानसिक स्थिरता को अक्षुण्ण रखकर राज्य शासन की भाँति जटिल एवं विघ्नबहुल कार्यों को सम्पन्न करते थे। काल के प्रभाव से लोग कर्मयोग विषयक सिद्धान्त को भूल गये थे। इसी से श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उसी पुरातन तत्त्व को नये रूप से सुनाया। उन्होंने कर्मयोग को 'उत्तम रहस्य' अर्थात् विशेष गोपनीय कहा; क्योंकि भोगसर्वस्व देहात्मवादी साधारण मनुष्य इसका तात्पर्य समझने एवं इसका अनुसरण करने में समर्थ नहीं होता। (४-१०)

साधारण हीनबुद्धि मनुष्य जो कर्मफल की कामना कर अनेक देव-देवियों की उपासना करते हैं; उन्हें सकाम कर्म का फल पाने में अधिक समय नहीं लगता। (४/१२)

संसार की सृष्टि, स्थिति और प्रलय के कारण भगवान श्रीकृष्ण का रूप धारणकर अवतीर्ण हुए हैं। वे अपना दृष्टान्त देकर अर्जुन को कार्य करने का कौशल सिखाते हैं। उन्होंने कहा, 'मुझे देखकर सीखो कि किस प्रकार कार्य करने के फलस्वरूप शोक, ताप या भय का कोई कारण घटित नहीं होता। मैं हर प्रकार का कार्य करता हूँ, किन्तु किसी कार्य में आसक्त नहीं हो पाता एवं किसी कार्य के फल की कामना भी नहीं करता।' ईश्वर को 'मैं कर्त्ता हूँ' यह अहंकार नहीं है, एवं उनके चाहने और पाने का कोई विषय नहीं है, इसी से वे कार्य करते हुए भी निर्लिप्त एवं कामना रहित रह पाते हैं। ईश्वर के इस स्वरूप का निर्दिष्ट रूप से चिन्तन करने पर कर्तृत्व बोध एवं कामना-वासना नष्ट हो जाती है तथा कार्यों के बीच भी मन शान्त और स्थिर रहता है। (४/१०-१४)

प्राचीन काल में, जिन्होंने जन्म-मरण रूपी दुःख से मुक्ति पानी चाही थी, उन्होंने कर्तापन के अभिमान एवं फलकामना को त्यागकर कार्य किया था। ईश्वर की लीला की धारणा करना कठिन होने पर भी मनुष्य महापुरुषों के जीवन की समीक्षाकर अहंकार और कामना का त्यागकर कार्य करने की शिक्षा-ग्रहण कर सकता है। (४/१५)

साधारणतः प्रतीत होता है कि देह और इन्द्रियों द्वारा जो कुछ किया जाता है वे सब ही कर्म हैं और चुप होकर बैठे रहना अकर्म अर्थात् कर्म का अभाव है। किन्तु वस्तुतः ऐसा नहीं है। मन में जिन सब वासनाओं तथा संकल्पों का उदय होता है वे ही सभी कार्यों के मूल स्रोत होते हैं। फिर हमलोग अपनी धारणा और विचार शक्ति के अनुसार कई कार्यों को विकर्म या असत् कर्म समझ लेते हैं। किन्तु हमलोगों की धारणा भ्रान्त हो सकती है। इसी से भगवान कहते हैं, कर्म, अकर्म और विकर्म किसे कहते हैं, इसे अच्छी तरह समझने की जरूरत है। इन

तीनों विषयों का स्पष्ट ज्ञान नहीं रहने पर, मनुष्य अनेक प्रकार की भूलें कर सकता है और दुःख पा सकता है। (४/१७)

गीता के चतुर्थ अध्याय का नाम ज्ञान योग है। इस अध्याय के अनेक श्लोकों में कर्म सम्बन्धी उपदेश रहने पर भी वे सब ज्ञान योग के साधकों के लिए विशेष रूप से प्रयोजनीय हैं। इसी से कर्मयोग के प्रसंग में इन सब श्लोकों की विवेचना नहीं की गयी है।

गीता के पंचम अध्याय का नाम कर्मसंन्यास योग होने पर भी इस अध्याय के अनेक श्लोकों में कर्मयोग के विषय में अनेक निर्देश हैं। दूसरे से छठे तक के पांच श्लोकों में कहा गया है कि कर्मत्याग एवं कर्मानुष्ठान, ये दो प्रकार की साधनाएं ही मुक्ति प्राप्ति की उपाय हैं। शरीर साध्य कार्यों के यथासंभव त्याग से कष्ट होता है, ज्ञान योग की साधना के द्वारा, आत्मा के स्वरूप का विचारकर मनोनिवेश करने की सामर्थ्य बहुत कम लोगों में होती है। इस सामर्थ्य की प्राप्ति के लिए प्रस्तुति की आवश्यकता होती है। यह प्रस्तुति है, सुदीर्घकाल तक निष्कामभाव से कर्मानुष्ठान के द्वारा 'मैं कर्त्ता एवं कर्मफलों का भोक्ता हूँ' इस मिथ्या अभिमान का यथासंभव त्याग करना। जो व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति के प्रति आसक्त या विद्वेषपरायण नहीं होते, सुख या दुःख की किसी घटना के घटने पर जो उत्फुल्ल या उद्विग्न नहीं हो जाते, वे अनायास ही मुक्ति प्राप्त करने में समर्थ होते हैं। कर्मयोग तथा ज्ञान योग ये दोनों ही साधनपथ मनुष्य को जीवन के चरम लक्ष्य तक पहुँचा देते हैं। तब, चाहे जिस किसी भी पथ का अवलम्बन क्यों न किया जाय, उस पथ के सही-सही अनुसरण करने की जरूरत है। निष्कामभाव से कर्मानुष्ठान के फलस्वरूप यदि मन से कामना-वासना पूर्णरूप से समाप्त हो जाय तो ज्ञानयोग का चरम लक्ष्य आत्मज्ञान की प्राप्ति में कोई बाधक तत्त्व शेष नहीं रह जाता। (५/२-६)

गीता के पंचम अध्याय के अवशिष्ट श्लोकों में कर्मसंन्यास योग के विषय में विशेष रूप से कहे जाने पर भी १०, ११, १२ इन तीन श्लोकों में कर्म को योग में परिणत करने के कौशल का उपदेश दिया गया है। जो व्यक्ति स्वयं को कर्त्ता मानता है, वह कार्य के फलस्वरूप सुख पाने और दुःख को दूर करने की इच्छा से—पुण्य प्राप्त करने के उद्देश्य से कार्य करता है। साथ ही कार्य के द्वारा किसी पाप की उत्पत्ति हो यह भी वह नहीं चाहता। किन्तु, जिसके मन में कामना-वासना, भय-भावना नहीं, जो स्वयं को ईश्वर के हाथों का खिलौना समझता है तथा समस्त कार्यों के फल ईश्वर को समर्पित करता है, उसे किसी प्रकार का पाप या पुण्य स्पर्श नहीं करता। कमल के पत्त पर जल पड़ने से सारा जल नीचे गिर जाता है, पत्ते पर जल का चिह्न मात्र भी नहीं रहता। निष्काम कर्मयोगी भी उसी प्रकार कार्य के शुभ या अशुभ फल में लिप्त नहीं होता। (५/१०)

जो कार्य को साधना के रूप में ग्रहण करते हैं वे प्रवर्त्तक साधक कामना-वासना आदि ईश्वर प्राप्ति में बाधक मन की मलिनता को दूर करने के उद्देश्य से, देह मन बुद्धि एवं इन्द्रियों द्वारा उपासना के अंगस्वरूप अनेक प्रकार के कार्य करने पर भी इनमें से किसी कार्य के फल-भोग में मन आकृष्ट नहीं हो, इस ओर सर्वदा सावधान रहते हैं। (५/११)

ईश्वर की प्राप्ति के उद्देश्य से कर्मानुष्ठान करने वाले साधक फल की कामना से रहित होकर कार्य करने के फलस्वरूप चिर शान्ति प्राप्त करते हैं। कार्य के फल से उन्हें स्वर्ग या नरक की प्राप्ति नहीं होती। (५/१२)

गीता के षष्ठ अध्याय में विशेषरूप से ध्यानयोग के विषय में विवेचन रहने पर भी यथायथ रूप से कर्मानुष्ठान करने या कर्मत्याग के सम्बन्ध में निर्देश भी दिया गया है। ऐसे योगी और संन्यासी देखे जाते हैं जो आग का स्पर्श नहीं करते, भिक्षा के द्वारा जो पकी रसोई खाने को मिल जाती है वही खाकर रहते हैं। फिर ऐसे भी कुछ हैं जो भिक्षाटन भी नहीं करते, चुप-चाप एक स्थान

पर बैठे रहते हैं; दूसरे के द्वारा मुँह में भोजन-जल डाल देने पर ग्रहण करते हैं। किन्तु, अग्नि-स्पर्श या भिक्षाटन-त्याग करने पर भी इस प्रकार के व्यक्ति यथार्थ योगी या संन्यासी नहीं भी हो सकते हैं, उनके मन में विषय-भोग की इच्छा या नाम-यश-प्राप्ति की वासना रह सकती है। इसी से कहा गया है कि कर्म के सुफल की प्राप्ति की इच्छा को मन में स्थान नहीं देकर जो करणीय कर्म करते हैं, उनको ही प्रकृत योगी या संन्यासी कहा जाता है। (६/१)

18/57-59-61

□

विवेकतीर्थ में कुमारी जोस्फिन मैक्लायड (२)

—स्वामी अमलेशानन्द
रामकृष्ण इंस्टिट्यूट ऑफ मोरल एंड स्पिरिचुअल एडुकेशन, मैसूर।

बिट्टी स्टार्जेस के साथ श्री लेगेट का विवाह पेरिस में ९ सितम्बर, १८९६ ई० को होना तय हुआ। तदनुसार वे सब पेरिस जाने का आयोजन कर रहे थे। उन्होंने स्वामीजी को अपने विवाहोत्सव में उपस्थित होने की आकांक्षा से उन्हें भी पेरिस आने को आमंत्रित किया। स्वामीजी प्रचार कार्य से लंदन जाने की सोच रहे थे। सुतरां, दैव निर्दिष्ट एकाधिक मिलन स्थिर कर उन्होंने लेगेट का निमंत्रण स्वीकार कर पेरिस होते हुए लंदन जाना तय किया। १७ अगस्त को एस० एस० टूरीन नामक जहाज से उन्होंने श्री लेगेट के साथ पेरिस के लिए प्रस्थान किया। वहाँ वे २४ अगस्त को पहुँचे। मैक्लायड और स्टार्जेस एक माह पहले ही पेरिस आकर विवाह के अनुष्ठान का आयोजन कर रही थीं। उन दोनों ने पेरिस के रेलवे स्टेशन पर आकर स्वामीजी की अगवानी की। वहाँ वे १५ दिनों तक ठहरे थे। आधुनिक सभ्यता की राजधानी पेरिस ने स्वामीजी को आकर्षित किया था। वे आरम्भ से ही मानव, सभ्यता और संस्कृति के सूक्ष्म पर्यवेक्षण के अनुरागी थे। यहाँ अपने संक्षिप्त निवास काल में मैक्लायड की व्यवस्था से स्वामीजी ने पेरिस में जो कुछ मोटे तौर पर द्रष्टव्य था, वह सब देखा। केवल दर्शनीय स्थान ही नहीं, अभिजात महलों में मैक्लायड के प्रभाव सूत्र से स्वामीजी ने पेरिस के तत्कालीन अनेक गण्यमान्य व्यक्तियों के साथ बात-चीत करने का सुयोग भी प्राप्त किया, जिन्होंने उनके भावी कार्यों के लिए भूमि तैयार करने में प्रचुर सहायता की थी।

फ्रैंसिस लेगेट के विवाहोत्सव में भाग लेकर दूसरे दिन १० सितम्बर को स्वामीजी ने लंदन के लिए प्रस्थान किया। वहाँ श्री ई० टी० स्टर्डी की सहायता से वेदान्त की कक्षा (क्लास) शुरू की। कुछ दिनों के बाद वहाँ से मैक्लायड को लंदन आने के लिए पत्र लिखा,—'यहाँ आकर एक कक्षा (क्लास) का गठन करो न!' पत्र पाकर मैक्लायड ने नव विवाहित लेगेट दम्पति के साथ इंगलैंड के लिए प्रस्थान किया। लंदन में स्वामीजी का प्रथम जन-व्याख्यान (पब्लिक लेक्चर) आयोजित हुआ था २२ अक्टूबर को पिकाडिली के प्रिंसेज हॉल में। मैक्लायड आदि उस दिन स्वामीजी की प्रथम वक्तृता में उपस्थित हुए थे। उस बार इंगलैंड में स्वामीजी सात सप्ताह तक ठहरे थे। मैक्लायड ने उनके विचारानुसार क्लास के गठन आदि के द्वारा स्वामीजी की प्रचुर सहायता की थी।

स्वामी विवेकानन्द के आग्नेय जीवन के संस्पर्श में आकर जोसिफन मैक्लायड की आत्मा का आवरण धीरे-धीरे उन्मोचित होने लगा। अस्पष्ट रूप से आध्यात्मिक जीवन की जिस कल्पना का वे अब तक अपने मन में यत्नपूर्वक पालन कर रही थीं, विवेकानन्द के संस्पर्श में आकर उन्होंने अपने जीवन में प्रत्यक्ष रूप से आध्यात्मिकता का एक जीवन्त रूप देखा। जिस सभ्यता और संस्कृति ने इस प्रकार के एक दिव्य शक्तिसम्पन्न चरित्र का सृजन किया है उसका साक्षात् परिचय पाने की आकांक्षा क्रमशः मैक्लायड के मन में बलवती होने लगती है। जो भारत वर्ष विवेकानन्द, रामकृष्ण, गीता, उपनिषद् की जन्मभूमि है, वह देश महापवित्र है, वह देश महातीर्थभूमि है। मैक्लायड ने बाद में अपना चित्त स्थिर कर सुदूर की इस तीर्थयात्रा की अनुमति पाने के लिए विवेकानन्द को अमेरिका से चिट्ठी लिखी। उन दिनों अमेरिका का कार्य अपने गुरुभाइयों के हाथों में सौंपकर स्वामीजी भारत लौट आये थे। मैक्लायड की भारत-भ्रमण की आकांक्षा जानकर स्वामीजी ने उन्हें लिखा—"हाँ, आ सकती हो, यदि तुम आवर्जना, अवनति, दरिद्रता देखना चाहती हो और लँगोटी पहने हुए लोगों के मुख से धर्म सुनना चाहती हो। इसके अतिरिक्त और कुछ की आशा करती हो तो नहीं आओ, मैं और एक भी आलोचना सुनने को प्रस्तुत नहीं हूँ।" [युगनायक विवेकानन्द—भाग ३, पृष्ठ ८७]

विदेशी नारी की कल्पना वास्तविकता के कठोर संघात से टूट जाने की आशंका स्वामीजी ने की थी, इसी से यह सावधानी से भरी हुई बात उन्होंने लिखी। उनके अनुरागीगण भारत आकर उनके कार्य में योगदान करें; ऐसा वे अवश्य ही चाहते थे, किन्तु उपकारक के रूप में नहीं। ऐसी ही सावधानी से भरी बातें लिखी थीं अपनी शिष्या निवेदिता को भी जब उन्होंने भारत के कार्य में आत्मनियोग करने की आकांक्षा व्यक्त की थी। किन्तु वे सब इससे संकल्पच्युत नहीं हुईं। निवेदिता, क्रिस्टिन, सेवियर दम्पति, गुडविन आदि विदेशियों ने अपने हृदय का रक्त देकर भारत-माता की पूजा की थी। १८९८ ई० की १२ फरवरी को मैक्लायड और सारा बुल भारत आयीं। स्वामीजी ने स्वयं हावड़ा स्टेशन जाकर उनकी अगवानी की। कलकत्ते के एक होटल में उनलोगों के ठहरने की व्यवस्था हुई।

अंत में भारतवर्ष। इस भारतवर्ष के भाव रूप को अमेरिका में निवास करती हुई भी क्या मैक्लायड ने स्वामी विवेकानन्द के व्यक्तित्व में नहीं देखा था? इस प्राचीन महादेश के हजार वर्षों के चिन्तन ही क्या स्वामी विवेकानन्द की वाणी के रूप में भाषायित नहीं हुए थे? उस भारतवर्ष का ही, इसके बाद मैक्लायड आविष्कार करेंगी अपनी चेतना में, अपनी अनुभूति की प्रगाढ़ता के द्वारा। इस उद्देश्य से ही अपने सागर के वक्ष पर वे प्रवाहित हो गयीं, विवेकानन्द के जीवन में अवगाहन करने के लिए। हृदय में यह उद्देश्य लेकर होटल की कृत्रिमता में तब वास नहीं किया जा सकता। अतएव, शीघ्र ही बेलुड़ मठ के लिए खरीदी गयी भूमि पर स्थित एक जीर्ण दोमंजिला मकान में उन्होंने अपना निवास स्थान बना लिया। उस समय मठ नीलाम्बर बाबू के भाड़े के मकान में स्थापित था तथा स्वामीजी भी वहीं निवास कर रहे थे। उनकी अनुमति लेकर मैक्लायड और सारा बुल उस पुराने मकान में आकर उसे सुसज्जितकर चमत्कारपूर्ण ढंग से निवास करने योग्य बना लिया एवं वहीं स्वामीजी के निकटतम सान्निध्य में वास करने लगीं। निवेदिता भी उसी समय भारत आ पहुँची। अतः उन्होंने भी मैक्लायड आदि के साथ योगदान किया। मठ की भूमि पर सर्वप्रथम इन सब ने ही वास करना शुरू किया।

गंगा तट के इस छोटे से भवन में स्वामीजी प्रतिदिन आते, मैक्लायड, निवेदिता और साराबुल के साथ चाय-पान में योगदान करते एवं भारतीय जीवन के धर्म-संस्कृति-इतिहास आदि विभिन्न विषयों के विवेचन के द्वारा विदेशिनियों को भारत का परिचय

करा देते। निवेदिता ने लिखा है, "प्रातः काल कुटी में आकर सवेरे से कई घंटे वहीं व्यतीत करना फिर दोपहर के बाद आना—यही उन दिनों स्वामीजी का नियम था —स्वामीजी इसी प्रकार आते थे- उमा—महेश्वर और राधाकृष्ण की कथा कहते, कितने ही गीतों और कविताओं की आंशिक आवृति करते थे। अधिक काल वे आज एक और कल एक—इस प्रकार कर भारतीय धर्मों की ही चर्चा हमलोगों के समीप करते—उनका जब जैसा विचार होता मानो तदनुसार ही एक एक को चुन लेते थे। किन्तु वे केवल धर्म विषयक उपदेश ही हमलोगों को देते थे, ऐसा नहीं था। कभी इतिहास, कभी लौकिक उपकथा अथवा विभिन्न समाज, जाति विभाग और लोकाचार की बहुविध उद्भट् परिणति और असंगति—इन सब का विवेचन होता। वस्तुतः उनके श्रोताओं के मन में होता मानो भारत माता अंतिम एवं श्रेष्ठ पुराण-स्वरूप होकर उनके श्रीमुख से स्वयं प्रकट हो रही हैं।"

[क्रमशः]

●

विवेक शिखा के महत्त्वपूर्ण विशेषांक

विवेक शिखा के तीन महत्त्वपूर्ण विशेषांक प्रकाशित हुए हैं। श्रीरामकृष्ण के अनुरागियों, विद्वानों तथा सामान्य पाठकों ने इनकी काफी सराहना की है। कुछ प्रतियाँ शेष हैं।

(१) स्वामी वीरेश्वरानन्द स्मृति अंक	पृष्ठ ७५	मूल्य ५ रुपये
(२) युवाशक्ति विशेषांक	पृष्ठ ६२	मूल्य ५ रुपये
(३) रामकृष्ण संघ शताब्दी अंक	पृष्ठ १११	मूल्य ६ रुपये

रजिस्टर्ड डाक से मँगाने पर ३/- रुपये अतिरिक्त।

कृपया रुपये मनीआर्डर द्वारा अग्रिम भेजें। वी० पी० पी० से भेजने का आग्रह नहीं करें।

—सम्पादक : विवेक शिखा

भव-सागर से पार करो

—डॉ० (श्रीमती) वीणा कर्ण
मैथिली विभागाध्यक्ष
मगध महिला कालेज, पटना

तुम्हीं छन्द हो, तुम्हीं गीत के
स्वर में, सुरभित वास तुम्हीं ।
अक्षर में चैतन्य चेतना
ऋतु में हो मधुमास तुम्हीं ।।

हो भास्वर आलोक-लोक में
गीता के उच्छ्वास तुम्हीं ।
जल में सुरस सुवास पुष्प में
शब्दयुक्त आकाश तुम्हीं ।।

नर में पौरुष नारी में हो
कीर्ति क्षमा धृति विमल प्रकाश ।
सामवेद के श्लोक-श्लोक में
आध्यात्मिक पावन उल्लास ।।

भव-बन्धन को भोग रही मैं
मृतप्राय, है जर्जर मन ।
विषयासक्त वेदना से जो
रहता है प्रतिपल उन्मन ।।

विषय वासना मन को घेरे
उर्ध्वचेतना क्षार करे ।
कंचन, काम-तरंग हृदय में
नृत्य करे, अभिसार करे ।।

हृदय कमल में हे ज्योतिर्मय
निरुपम नित्य-निवास करो ।
सत् चित ब्रह्मरूप सुरभित हो
रोम-रोम में वास भरो ।।

भ्रमनद से हे ठाकुर, मेरा
हाथ पकड़ उद्धार करो ।
हूँ अथाह में देव पड़ी मैं
भव सागर से पार करो ।।

रिपोर्ताज

बेलुड़ मठ में रूस के वैज्ञानिकों-लेखकों का आगमन

बेलुड़, २० जनवरी—सोवियत रूस से इन दिनों जो वैज्ञानिक और लेखकगण कलकत्ता आये हुए हैं, वे आज दक्षिणेश्वर और बेलुड़ घूमने गये। दक्षिणेश्वर का मन्दिर श्रीरामकृष्ण का साधना क्षेत्र था, एवं बेलुड़ मठ हुआ उनका ही संघ—रामकृष्ण मठ और मिशन का प्रधान कार्यालय। विगत कई दिनों से ही सोवियत रूस के प्रतिनिधिगण इन दोनों स्थानों के लिए अपनी उत्सुकता प्रकट कर रहे थे। आज मिशन के संन्यासियों ने उन्हें अपने साथ घुमा-घुमाकर सभी जगहें दिखायी।

कम्यूनिस्ट शासित देश के उच्च पर्याय के इन प्रतिनिधियों ने अपनी श्रद्धा-भक्ति से वहाँ उपस्थित अनेक व्यक्तियों को अवाक् कर दिया। इन लोगों ने आज दक्षिणेश्वर एवं बेलुड़ के प्रायः सभी प्रधान मन्दिरों को घूम-घूमकर देखा एवं फूल-बेलपत्र तथा प्रसाद का संग्रह किया। किसी मन्दिर में उन्हें साष्टांग प्रणाम करते नहीं देखा गया, किन्तु सर्वत्र ही उन्होंने कर जोड़कर, नतमस्तक होकर मिशन के संन्यासियों को विमुग्ध कर दिया।

बेलुड़ में रामकृष्ण मठ और मिशन के महाध्यक्ष (प्रेसिडेन्ट) स्वामी गंभीरानन्दजी महाराज के साथ भी इस रूसी प्रतिनिधि मंडल के सदस्यों की बातचीत करायी गयी। रूसी प्रतिनिधियों ने प्रेसिडेन्ट महाराज को प्रणाम किया। प्रेसिडेन्ट महाराज ने प्रत्यभिवादन में उन लोगों के हाथों को अपने हाथों में भर लिया। इन प्रतिनिधियों में कोई-कोई खूब अच्छी अँग्रेजी जानते हैं। उन लोगों ने गंभीरानन्दजी से अँग्रेजी में बातें कीं। अन्य कुछ लोगों ने दुभाषिये का सहारा लिया। उन लोगों के द्वारा गंभीरानन्दजी को मास्को आने का आमंत्रण देने पर प्रबुद्ध संन्यासी ने कौतुकपूर्वक उत्तर दिया : "वृद्ध हो गया हूँ, अब क्या जा पाऊँगा !"

आज दोपहर में मठ के एक और प्रबुद्ध संन्यासी स्वामी अभयानन्द (भरत महाराज) के साथ भी इन अतिथियों का परिचय और वार्तालाप हुआ। गंगा के तट पर स्वामीजी (विवेकानन्द) के भवन में भरत महाराज अभ्यस्त मुद्रा में बैठे थे, वहीं बातचीत हुई। इस रूसी दल में रिवाकोव नामक एक भारत-विशेषज्ञ पंडित हैं। भरत महाराज के सम्बन्ध में उनका ही विशेष आग्रह था। श्रीरामकृष्ण और श्रीमाँ की लीला के सम्बन्ध में भरत महाराज ने थोड़ा-बहुत बताया। रूस के एक तरुण प्रतिनिधि ने भरत महाराज को पाँव छूकर प्रणाम किया।

बेलुड़ में ही मध्याह्न कालीन भोजन की व्यवस्था थी। इसके पहले श्रीरामकृष्ण, माँ, स्वामीजी एवं स्वामी ब्रह्मानन्द के मन्दिरों का दर्शन हो गया है। तदुपरान्त मध्याह्न-भोजन से सोवियत प्रतिनिधियों को काफी तृप्त देखा गया। सार्जेइ सेरेब्रियानि नामक एक रूसी साहित्य-विशेषज्ञ को ठीक इसी समय पूछा गया : "कैसा लगता है ?" सार्जेइ ने कहा : "बहुत अच्छा लगता है। क्या अपूर्व भोजन है !" तदुपरान्त ही थोड़ा गंभीर होकर उनका मंतव्य : "सचमुच कहता हूँ, इतनी सुन्दर जगह देखकर मन भर गया है।"

भोजन के पश्चात् मठ के संन्यासीगण अतिथियों को ले गये पल्लीमंगल केन्द्र। वहाँ प्रत्येक अतिथि को एक एक पटुए का झोला उपहार में दिया गया। ये झोले मिशन के उद्योग से ही तैयार हुए हैं। मीरा सालगानिक

नामक एक महिला प्रतिनिधि को मठ-मिशन के अन्यतम सह-सचिव स्वामी आत्मस्थानन्द ने इस विषय में सब समझा-बुझा दिया। इसके बाद स्वामी आत्मस्थानन्दजी ने मीरा को बताया कि इस बार मठ में पटसन का कम्बल भी तैयार होगा। मीरा ने प्रश्न किया: "सुना है, वह कम्बल ऊन के कम्बल से भी सस्ता एवं गरम होगा।" आत्मस्थानन्दजी का उत्तर: "सस्ता तो अवश्य ही होगा, किन्तु ऊन के कम्बल से भी गरम होगा ऐसी बात नहीं कह सकता।" मीरा पुनः बोल उठीं: "शायद किसी अखबार में ऐसा देखा था···।" उन्हें रोकते हुए आत्मस्थानन्दजी ने फिर बताया, "अखबार में जो कुछ लिखा है उस पर ही विश्वास नहीं कर बैठिएगा।" (हो-हो हँसी का रव गूंज उठा।)

कुल मिलाकर ऐसे ही कौतुक एवं आनन्द का परिवेश। सोवियत युनियन के अकादमी ऑफ साइंसेज एवं राइटर्स युनियन के ये प्रतिनिधि प्रातः सवा नौ बजे दक्षिणेश्वर पहुँचे। बेलुड़ छोड़कर निकलने के समय पौने दो हो जाता है। बेलुड़ छोड़ने के पहले मुख्य मन्दिर के सामने सब ने एक साथ खड़े होकर ग्रूप फोटो लिया। पीछे मन्दिर, सामने संन्यासीगण और उनके अतिथिवृन्द। किसी एक सज्जन ने कहा, धर्मस्थान में आकर भी कम्यूनिस्ट देश के लोगों का यह व्यवहार देखकर विस्मित होना पड़ेगा। उत्तर में रामकृष्ण मिशन इंस्टीट्यूट आफ कल्चर के सचिव स्वामी लोकेश्वरानन्द ने कहा, "मैं थोड़ा भी विस्मित नहीं होता हूँ। मैं तो पहले भी उस देश में गया हूँ, इसलिए मुझे कुछ भी अस्वाभाविक नहीं लगता।"

पुस्तक: विवेचन: रामकृष्ण मिशन इंस्टीट्यूट ऑफ कल्चर के प्रयत्न से एक पुस्तक प्रकाशित हुई है: नाम है- "विवेकानन्द स्टडीज इन सोवियत युनियन।" रूसी प्रतिनिधियों की उपस्थिति में इस पुस्तक का विमोचन बेलुड़ में किया मठ के महासचिव स्वामी हिरण्मयानन्द ने। शाम को गोलपार्क स्थित रामकृष्ण मिशन इंस्टीट्युट ऑफ कल्चर में श्रीरामकृष्ण मिशन विषयक सेमिनार के दूसरे दिन परमाणु वैज्ञानिक डॉ० राजा रमन्ना एवं अन्य अनेक रूस तथा भारत के विशिष्ट वक्ताओं ने व्याख्यान दिये।

—(आनन्द बाजार पत्रिका, १२ जनवरी,'८७ से साभार)

यदि तुम ईश्वर को नहीं पुकारो—और कितने लोग तो उन्हें याद ही नहीं करते हैं—इससे उनका क्या? यह तो तुम्हारा ही दुर्भाग्य है। भगवान् की ऐसी माया है कि उन्होंने ऐसा करके सबको भुलाये रखा है। ईश्वर सोचते हैं—वे सब प्रसन्न हैं, उन्हें इसी तरह रहने दो।

—श्रीमाँ सारदा देवी

रामकृष्ण मिशन, बेलुड़ मठ
की
७७ वीं वार्षिक साधारण सभा में प्रस्तुत रिपोर्ट का सारांश

रामकृष्ण मठ एवं मिशन के महासचिव स्वामी हिरण्मयानन्दजी महाराज ने सूचित किया है कि रामकृष्ण मिशन की ७७ वीं वार्षिक साधारण सभा बेलुड़ मठ में रविवार, २८ दिसम्बर, १९८६ को रामकृष्ण मिशन के महाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी गम्भीरानन्दजी महाराज के सभापतित्व में हुई। सभा में उपस्थापित रामकृष्ण मिशन की परिचालन परिषद (Governing Body) के प्रतिवेदन का एक संक्षिप्त सारांश यहाँ प्रस्तुत है।

रिपोर्ट की अवधि में रामकृष्ण मिशन ने बाढ़, तूफान आदि प्राकृतिक विपर्ययों से पीड़ित निराश्रय लोगों को राहत पहुँचाने में 'राहत तथा पुनर्वास' खाते में १४,००,७६५ रुपये व्यय किये। इसके अतिरिक्त जनहिताकांक्षी लोगों से प्राप्त ११,०८,०५२ रुपयों की राहत-सामग्रियों का भी ऐसे दुर्दशाग्रस्त लोगों में वितरण किया गया।

रामकृष्ण मिशन ने ३,६०,४८६ रुपये खर्च करके कई राहत-सेवा परियोजनाओं का भी संचालन किया।

रामकृष्ण मिशन तथा रामकृष्ण मठ के कई शाखा केन्द्रों के माध्यम से काफी धन लगाकर कृषि-अर्थनैतिक सेवाओं, कुटीर उद्योग, मत्स्यपालन, स्वास्थ्य सेवाओं, शैक्षणिक सेवाओं आदि पल्लीमङ्गल (सामूहिक ग्रामोन्नयन) परियोजनाओं को वास्तविक रूप दिया गया। रामकृष्ण मिशन के बेलूड़ मठ के प्राङ्गण में अवस्थित इसके प्रधान कार्यालय ने ही ७,७४,९४३ रूपये इस दिशा में व्यय किये।

'रामकृष्ण दर्शन' नाम की भगवान श्रीरामकृष्णदेव के जीवन तथा उनके उपदेशों की एक प्रदर्शनी का तथा बेलुड़-स्थित रामकृष्ण मिशन सारदापीठ के अन्तर्गत ग्रामोन्नयन के कार्यक्रमों में युवकों के प्रशिक्षण के लिए 'समाज-सेवक-शिक्षण मन्दिर' नाम की एक संस्था का आरम्भ वर्तमान रिपोर्ट में आलोचित वर्ष की प्रमुख घटनाओं में विशेषतः उल्लेखनीय हैं।

रायपुर (मध्यप्रदेश) स्थित मिशन के शाखाकेन्द्र ने बस्तर जिले के अवूझमाड़ क्षेत्र में निःशुल्क शिक्षा, चिकित्सा, वृत्ति-शिक्षा आदि सेवाओं का बहुत बड़े पैमाने पर जनजाति-कल्याण के एक कार्यक्रम का शुभारम्भ किया।

अगरतल्ला में रामकृष्ण मिशन के एक शाखाकेन्द्र ने काम करना शुरू किया। इटानगर तथा राजामहेन्द्री शाखाकेन्द्रों में भ्राम्यमाण चिकित्सा-सेवाओं का आरम्भ हुआ।

मठ तथा मिशन परिचालित शिक्षाकेन्द्रों में शिक्षार्थियों को परीक्षाओं में पहले वर्षों के अनुरूप अच्छे ही फल मिले। पश्चिमी बंगाल की माध्यमिक परीक्षाओं में हमारे छात्रों ने क्रमशः दूसरा, चौथा, छठा, आठवाँ, दसवाँ, ग्यारहवाँ, तेरहवाँ, पन्द्रहवाँ, सोलहवाँ तथा बीसवाँ स्थान एवं उच्च माध्यमिक परीक्षाओं में क्रमशः तीसरा, चौथा, सातवाँ, नवाँ तथा तेरहवाँ स्थान प्राप्त किया।

रामकृष्ण मठ की रिपोर्ट में आलोच्य अवधि के कार्यक्रमों में काँथि (मेदिनीपुर) रामकृष्ण मठ में भगवान

श्रीरामकृष्णदेव के संगमरमर के एक विग्रह की प्रतिष्ठा तथा राजकोट में सौरशक्तिचालित जलयंत्र के द्वारा पेयजल की आपूर्ति हेतु निर्मित ५,००० लिटर आयतन के एक विशाल जलाधार का कार्यारम्भ उल्लेखनीय रहे।

रामकृष्ण मिशन ने अपने ८ अस्पतालों, ६६ चिकित्सालयों तथा १५ भ्राम्यमाण चिकित्साकेन्द्रों के माध्यम से विवेच्य अवधि में ४२,८७,३८८ रोगियों की सेवा की।

रामकृष्ण मठ ने अपने अधीनस्थ ५ अस्पतालों, १७ चिकित्सालयों तथा ४ भ्राम्यमाण चिकित्सालयों द्वारा ७,४१,१२१ रोगियों की सेवा की। इनमें से ३ अस्पतालों, ८ चिकित्सालयों तथा ३ भ्राम्यमाण चिकित्सालयों की अवस्थिति प्राथमिक चिकित्सा की सुविधाओं से भी रहित ग्रामीण तथा जनजाति प्रधान क्षेत्रों में हैं। शिक्षा के क्षेत्र में रामकृष्ण मिशन के ९६६ तथा रामकृष्ण मठ के ९२ शिक्षा केन्द्रों में विद्यार्थियों की संख्या क्रमशः १,१८,९९९ तथा ९,६७६ रही। इनमें से ४२८ विधि-मुक्त शिक्षा केन्द्रों को लेकर कुल ८६३ प्रतिष्ठान ग्रामीण तथा जनजाति प्रधान क्षेत्रों में अवस्थित हैं।

रिपोर्ट के वर्ष में हमारे प्रायः सभी शाखा केन्द्रों में राष्ट्रीय युवा दिवस का आयोजन यथोचित श्रद्धा तथा उत्साह के साथ किया गया। इन उत्सवों की परिसमाप्ति बेलुड़ मठ के प्राङ्गण में आयोजित एक विशाल युवा-सम्मेलन में हुई जिसमें कोई ११'००० प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

रामकृष्ण मिशन तथा रामकृष्ण मठ के अन्य देशों में अवस्थित शाखाकेन्द्रों ने विभिन्न प्रकार की स्वास्थ्य सेवाओं एवं सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक कार्यक्रमों का आयोजन किया।

बेलुड़ मठ में अवस्थित प्रधान कार्यालय को छोड़कर रामकृष्ण मिशन तथा रामकृष्ण मठ की आलोचना के वर्ष के अन्ततक देश भर में तथा अन्य देशों में क्रमशः ७५ तथा ७० शाखाकेन्द्रों ने कार्य किये।

स्वामी हिरण्मयानन्द
महा सचिव

स्वामी विवेकानन्द की १२५वीं जन्म-तिथि पूजा

रामकृष्ण मिशन, नयी दिल्ली

रामकृष्ण मिशन, नयी दिल्ली के सचिव स्वामी गोकुलानन्दजी ने सूचित किया है कि २२ जनवरी, १९८७ ई० को स्वामी विवेकानन्द की १२५ वीं जन्म तिथि पूजा का आयोजन मंगल आरती, वैदिक मंत्रोच्चार, भक्ति-संगीत तथा विशेष पूजा और हवन के साथ सम्पन्न हुई। २५ जनवरी को मिशन के सभाकक्ष में सेन्टर वेदान्तिक रामकृष्ण, ग्रेज, फ्रांस के प्रधान स्वामी ऋतजानन्द की अध्यक्षता में जन सभा का आयोजन किया गया। मुख्य अतिथि थे डॉ० कर्ण सिंह। वक्ता थे श्री सी. एम. मलिक (अंग्रेजी) तथा श्री तेज भान नागपाल (हिन्दी)। इन सब ने स्वामी विवेकानन्द के जीवन एवं संदेश पर विचारोत्तेजक एवं सारगर्भ व्याख्यान दिये।

१ फरवरी को मिशन के प्रांगण में छात्र दिवस, जनसभा और पुरस्कार वितरण का आयोजन हुआ। अध्यक्ष थे दिल्ली के राज्यपाल श्री एच० एल० कपूर। इस अवसर पर विभिन्न कॉलेजों और स्कूलों के छात्रों ने भाषण किये, पाठ-आवृति की। भाषण का विषय था--स्वामी विवेकानन्द के संदेश। श्री कपूर ने अध्यक्षीय भाषण करने के उपरान्त पुरस्कार वितरण किये।

इस अवसर पर 'युवा और राष्ट्रीय एकता' विषय पर हिन्दी और अँग्रेजी में भाषण-प्रतियोगिता का भी आयोजन किया गया।

रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना

रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना में गत २२ जनवरी को बिहार के क्रीड़ा राज्य मंत्री श्री अर्जुन विक्रम शाह की अध्यक्षता में स्वामी विवेकानन्द की जयन्ती मनायी गयी। इस अवसर पर बंगवासी कॉलेज, कलकत्ता के प्रो० तापस बोस ने बंगला में तथा डॉ० केदारनाथ लाभ, सम्पादक, विवेक शिखा ने हिन्दी में स्वामीजी के जीवनादर्शों के विभिन्न आयामों पर प्रकाश डाला। स्वामी सोमेश्वरानन्दजी ने अतिथियों का स्वागत एवं स्वामी शिवसेवानन्दजी ने धन्यवाद ज्ञापन किया।

रामकृष्ण मठ, मथुरा, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द स्मृति मंदिर, खेतड़ी, रामकृष्ण मठ, इलाहाबाद; रामकृष्ण मिशन, लखनऊ, रामकृष्ण मिशन, राँची आदि रामकृष्ण मिशन के विभिन्न शाखा केन्द्रों में उल्लासपूर्वक विवेकानन्द जयन्ती के आयोजन किये गये।

श्रीरामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम, छपरा

श्रीरामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम, छपरा (विहार) में स्वामी विवेकानन्द की जयन्ती धूम-धाम से मनायी गयी। मंगल आरती, चण्ठी-पाठ, विशेष पूजा, होम एवं प्रसाद वितरण के साथ ही शाम को आरती-भजन का आयोजन हुआ। इस अवसर पर आयोजित सभा में श्री ब्रजमोहन प्रसाद सिन्हा एवं श्री राजकिशोर तिवारी के विचारपूर्ण एवं प्रेरक भाषण हुए।

श्रीरामकृष्ण मठ, लखनऊ

लखनऊ, ५ फरवरी। रामकृष्ण मठ, लखनऊ के अध्यक्ष श्रीमत स्वामी श्रीधरानन्दजी महाराज ने सूचित किया है कि २ फरवरी, ८७ को निरालानगर, लखनऊ में रामकृष्ण मठ का उद्घाटन होगा। सेवाश्रम से मठ के प्रांगण तक शोभा-यात्रा के बाद रामकृष्ण मठ एवं मिशन के महाध्यक्ष श्रीमत स्वामी गंभीरानन्दजी महाराज द्वारा नये मन्दिर में श्रीरामकृष्ण, श्रीसारदा देवी तथा स्वामी विवेकानन्द के चित्रों का प्रतिष्ठापन किया जायगा। इस अवसर पर आयोजित जन सभा का आरंभ श्रीमत स्वामी गंभीरानन्दजी महाराज के आशीर्वचन से होगा। श्रीरामकृष्ण के जीवन और संदेश पर श्री आर० के त्रिवेदी का भाषण होगा। मुख्य अतिथि पं० कमलापति त्रिपाठी तथा अध्यक्ष डॉ० वी० गोपाल रेड्डी होंगे।

३ फरवरी को दिल्ली के रामायणी पं० त्रिलोक मोहन जी द्वारा रामचरित मानस कथा कही जायगी। उसी दिन वाद्य संगीत का आयोजन रामकृष्ण मिशन एवं मठ के सहाध्यक्ष श्रीमत स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज के आशीर्वचन के साथ होगा।

४ फरवरी को रामचरितमानस कथा के साथ नृत्य-नाट्य कार्यक्रम का आयोजन रामकृष्ण मठ एवं मिशन के महासचिव स्वामी हिरण्मयानन्दजी के आशीर्वचन से होगा। इस अवसर पर भारतीय कला केन्द्र, नयी दिल्ली द्वारा 'कृष्णावतार' प्रस्तुत किया जायगा।

*

भारत तभी जगेगा जब विशाल हृदयवाले सैकड़ों स्त्री-पुरुष भोग, विलास और सुख की सभी इच्छाओं को विसर्जित कर मन, वचन और शरीर से उन करोड़ों भारतीयों के कल्याण के लिए सचेष्ट होंगे जो दरिद्रता तथा मूर्खता के अगाध सागर में निरन्तर नीचे डूबते जा रहे हैं।

— **स्वामी विवेकानन्द**

(वि० सा० ६, ३०७)

हिन्दू धर्म

प्रश्नोत्तर मालिका

लेखक—स्वामी हर्षानन्द

प्रकाशक—रामकृष्ण मठ
मुट्ठीगंज, इलाहाबाद—२११००३
पृष्ठ संख्या-६२, मूल्य—२ रुपये

वर्तमान काल में हिन्दू धर्म के सम्बन्ध में अनेक भ्रांतियाँ फैल गयी हैं। इस धर्म पर जाने-अनजाने इतनी चोटें की जाती रहीं हैं कि आज सामान्यत: हिन्दुओं की मनोदशा में एक प्रकार की हीन ग्रंथि घर कर गयी है। मनोवैज्ञानिक रूप से एक हिन्दु (विशेषकर तथाकथित पढ़ा-लिखा आधुनिक हिन्दू) अपने को हिन्दू कहने में एक प्रकार की लज्जा, संकोच और हीनता का बोध करने लगता है। जिस धर्म ने विश्व को इतने ऊँचे दर्शन, साहित्य, संगीत, स्थापत्य और संस्कृति प्रदान की, जीवन-मूल्य प्रदान किया है उसे ही अपना धर्म मानने में आज हमें संकीर्ण कहलाने की आशंका होने लगी है। यह एक भयावह एवं चिन्ताजनक स्थिति है।

विश्ववंद्य स्वामी विवेकानन्द ने पाश्चात्य देशों में हिन्दू धर्म की विजय-वैजयन्ती फहराकर भारत लौटने पर सन् १८९७ ई० में लाहौर में आयोजित स्वागत सभा में 'हिन्दू धर्म के सामान्य आधार' विषय पर अपना सारगर्भ व्याख्यान देते हुए सिंह गर्जना की थी—"जब मनुष्य अपने बाप पर घृणा करने लग जाता है. तब समझना चाहिए कि उस पर अंतिम चोट बैठ चुकी है। जब वह अपने पूर्वजों को मानने में लज्जित होता है तो समझ लो उसका विनाश निकट है। यद्यपि मैं हिन्दू जाति में एक नगण्य व्यक्ति हूँ, तथापि अपनी जाति और अपने पूर्वजों के गौरव से मैं अपना गौरव मानता हूँ। अपने को हिन्दू बताते हुए, हिन्दू कहकर अपना परिचय देते हुए, मुझे एक प्रकार का गर्व-सा होता है।" (विवेकानन्द साहित्य: पंचम खंड : पृ० २७२) आज हम उसी अंतिम चोट के शिकार हो गये हैं और फलत: हिन्दू धर्म को अनेक संकीर्णताओं का जंगल समझ बैठे हैं। कारण यह है कि अनेक लोग हिन्दू धर्म को एक सम्प्रदाय, एक पंथ या एक मत मानने की भूल कर बैठते हैं। वस्तुत: हिन्दू धर्म एक चिन्तन शैली है, एक उच्चतर जीवन-मूल्य की तलाश है, मनुष्य के चरम स्वरूप को जानने के लिए किया जाने वाला शिखारारोहण है, एक अर्थपूर्ण जीवन-दृष्टि है, किसी शाश्वत और अखण्ड सत्य के संधान के लिए की जानेवाली एक अनवरत, अथक अनन्त यात्रा है। अखिल ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी सत्य है, शिव है, सुन्दर है वह सब इसे वरेण्य है, और जो कुछ भी अशिव, अभद्र और असत्य है वह सब इसे त्याज्य है।

हिन्दू धर्म के सम्बन्ध में हमारे भ्रमों का कारण हमारी अज्ञानता है। यह अज्ञानता जितनी जल्दी समाप्त होगी, हमारे समाज और राष्ट्र का उतना ही मंगल होगा। इसी दृष्टि को लक्ष्य में रखकर रामकृष्ण मठ, इलाहाबाद के अध्यक्ष, परम प्रज्ञावान साधु स्वामी हर्षानन्दजी महाराज ने प्रस्तुत पुस्तिका का प्रणयन किया है। इस पुस्तिका में हिन्दू धर्म क्या है, हिन्दू धर्म में ईश्वर का स्वरूप, बहुदेवोपासना, मूर्तिपूजा, मंदिरों का महत्व, उपासना का अर्थ, तीर्थ यात्रा की आवश्यकता, मानव के स्वरूप और जीवन के लक्ष्य के सम्बन्ध में हिन्दू धर्म के विचार आदि जैसे चालीस जीवन्त एवं ज्वलंत समस्याओं पर स्वामीजी ने अपने बड़े ही सुलझे हुए, पांडित्यपूर्ण एवं तलस्पर्शी विचार बेबाक रूप में प्रस्तुत किये हैं। ये विचार हमारे मन-प्राणों को छूते हैं, हमें मुग्ध करते हैं और हमें हिन्दू धर्म की गरिमा एवं सप्राणता पर सोचने को विवश करते हैं।

स्वामी हर्षानन्दजी की दृष्टि वैज्ञानिक, चिन्तन तर्कपूर्ण और विवेचन हृदयग्राही है। मनीषी लेखक ने हिन्दूधर्म से सम्बद्ध प्राय: ऐसे सभी प्रश्नों के सटीक एवं सबल उत्तर देने की सफल चेष्टा की है जो हिन्दू धर्म के विरुद्ध उछाले जाते रहे हैं तथा हिन्दुओ के मन को मथते रहे हैं। अगस्त के चुल्लू में समुद्र के समान हिन्दू धर्म की प्राय: समस्त विशिष्टताओं को संक्षेप में इस लघु पुस्तिका में रख दिया गया है।

मूलत: अंग्रेजी में Hinduism through Questions and Answers नाम से प्रकाशित इस पुस्तिका का अनुवाद कन्नड़ और तेलुगु में भी हो चुका है। यही इसकी उपादेयता एवं प्रियता का प्रमाण है। पुस्तक की भाषा सरल, शैली रोचक और छपाई सुन्दर है। सर्वजन सुलभ बनाने के लिए प्रकाशन के लागत मूल्य पर ही पुस्तक का मूल्य रखा गया है जो प्रशंसनीय है। मेरा विश्वास है, इस पुस्तक का स्वागत हिन्दू धर्म में रुचि रखने वाले लोगों में व्यापक रूप से होगा।

—के० ना० लाभ

Faith, faith, faith in ourselves, faith, faith in God—this is the secret of greatness.

—**Swami Vivekananda**

With Best Compliments From :

THE SIRPUR PAPER MILLS LIMITED

(Regd. Office : 5-9—201/2 & 2A, Chirag Ali Lane, Hyderabad—500 001 A.P.)

Manufacturers of quality printing-writing, packing-wrapping papers and paper boards.
Also manufacture superior quality rag content papers and air mail papers.

MILLS : SIRPUR-KAGHAZ NAGAR—505 296

Infinite patience, infinite purity, and infinite perseverance are the secret of success in a good cause.

—*Swami Vivekananda*

With Best Compliments From :

ORIENT PAPER & INDUSTRIES LIMITED

(Regd. Office : Brajraj nagar, Orissa)

Manufacturers of Superior quality

Printing-writing, packing-wrapping papers and paper boards.

MILLS : BRAJRAJ NAGAR—768 216

AMLAI—484 117

बैद्यनाथ च्यवनप्राश
अब पोलीजार मे
उपलब्ध
स्फूर्ति
कफ खांसी नाशक
यौवन
दिमागी ताजगी
विकास
बलवर्द्धक
बैद्यनाथ
च्यवनप्राश
अवलेह स्पेशल
आदर्श आयुर्वेदिक
पारिवारिक टानिक
कहीं आपके डिब्बे में "मोपेड" तो नहीं ?
प्रत्येक एक किलो स्पेशल और साधारण एवं ५०० ग्राम स्पेशल च्यवनप्राश के डिब्बे में इनामी कूपन प्राप्त कर "मोपेड" एवं २०५ अन्य पुरस्कार प्राप्त करने का सुनहरा अवसर ।
बैद्यनाथ ७०० से अधिक दवाएं पांच आधुनिक कारखानों में तैयार करता है
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड
बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-१

विवेकानन्द साहित्य

कुल १० खंड, डबल डिमाई साईज में अनुक्रमणिका समेत पृष्ठ संख्या प्रति खंड लगभग ४५०; जबूत और आकर्षक सजिल्द नव प्रकाशित तृतीय संस्करण का मूल्य प्रति खंड रु० २८, सम्पूर्ण सेट ० २ ५। पुस्तक विक्रेताओं को विशेष कमिशन दिया जाता है।

इन ग्रन्थों में स्वामीजी के दर्शन, धर्म, राष्ट्र, समाज आदि विषयक ओजपूर्ण व्याख्यानों तथा म्भीर लेखों का पूर्ण संकलन है जो अंग्रेजी में प्रकाशित और अप्रकाशित उनकी सभी रचनाओं, पत्रों, विताओं, व्याख्यानों, प्रवचनों तथा कथाओं का हिन्दी अनुवाद है। अनुवादकों में पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला', पं० सुमित्रानन्दन पंत, डा० प्रभाकर माचवे, श्री फणीश्वरनाथ 'रेणु' डा० नर्मदेश्वर प्रसाद ादि ख्यातिलब्ध साहित्यकारों के नाम उल्लेखनीय हैं।

हमारे अन्य प्रकाशन

श्रीरामकृष्ण (संक्षिप्त जीवनी)	रु०	३.७५
श्रीरामकृष्ण की कहानियाँ	रु०	५.६०
श्रीरामकृष्ण की जीवन कथा	रु०	८.००
श्रीसारदा देवी	रु०	२९.६०
श्रीसारदा देवी (संक्षिप्त जीवनी)	रु०	२.७५
स्वामी विवेकानन्द (संक्षिप्त जीवनी)	रु०	३ ७५
विवेकानन्द की कहानी	रु०	६ ६०
मन और उसका निग्रह	रु०	८.६०
साधना और सिद्धि	रु०	५.'०
समाधि के सोपान	रु०	४ ६०
धर्म क्यों ?	रु०	३.६०

अद्वैत आश्रम
५ डिह्री इन्टाली रोड
कलकत्ता–७०० ०१४

आनन्द डाइजेस्ट
पारिवारिक मासिक पत्रिका
के सौजन्य से
श्री हिमालय प्रेस में कवर मुद्रित

मूल्य : २.५०

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं श्रीकांत साम द्वारा जनता प्रेस, नया टोला, पटना—४ में मुद्रित।

डाक पंजीयित संख्या बी० एच० पी० १४—८३ अंक—२—१९८७

विवेकानन्द साहित्य

कुल १० खंड, डवल डिमाई साईज में अनुक्रमणिका समेत पृष्ठ संख्या प्रति खंड लगभग ४५०; मजबूत और आकर्षक सजिल्द नव प्रकाशित तृतीय संस्करण का मूल्य प्रति खंड रु० २८, सम्पूर्ण सेट रु० २ ५ । पुस्तक विक्रेताओं को विशेष कमिशन् दिया जाता है।

इन ग्रन्थों में स्वामीजी के दर्शन, धर्म, राष्ट्र, समाज आदि विषयक ओजपूर्ण व्याख्यानों तथा गम्भीर लेखों का पूर्ण संकलन है जो अंग्रेजी में प्रकाशित और, अप्रकाशित उनकी सभी रचनाओं, पत्रों, कविताओं, व्याख्यानों, प्रवचनों तथा कथाओं का हिन्दी अनुवाद है। अनुवादकों में पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', पं० सुमित्रानन्दन पंत, डा० प्रभाकर माचवे, श्री फणीश्वरनाथ 'रेणु' डा० नर्मदेश्वर प्रसाद आदि ख्यातिलब्ध साहित्यकारों के नाम उल्लेखनीय हैं।

हमारे अन्य प्रकाशन

श्रीरामकृष्ण (संक्षिप्त जीवनी)	रु०	३.७५
श्रीरामकृष्ण की कहानियाँ	रु०	५.६०
श्रीरामकृष्ण की जीवन कथा	रु०	८.००
श्रीसारदा देवी	रु०	२६.६०
श्रीसारदा देवी (संक्षिप्त जीवनी)	रु०	२.७५
स्वामी विवेकानन्द (संक्षिप्त जीवनी)	रु०	३ ७५
विवेकानन्द की कहानी	रु०	६ ६०
मन और उसका निग्रह	रु०	८.६०
साधना और सिद्धि	रु०	५.००
समाधि के सोपान	रु०	४ ६०
धर्म क्यों ?	रु०	३.६०

अद्वैत आश्रम

५ डिही इन्टाली रोड

कलकत्ता—७०० ०१४

आनन्द डाइजेस्ट

पारिवारिक मासिक पत्रिका

के सौजन्य से

श्री हिमालय प्रेस में कवर मुद्रित

मूल्य : २.५०

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं श्रीकांत लाभ द्वारा जनता प्रेस, नया टोला, पटना—४ में मुद्रित।